मूल्य : ₹ 50 जनवरी 2026 आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

दुधारू पशुओं के लिए चारा चुकंदर

लेजर लैंड लेवलर है बहुपयोगी मशीन

ई-नाम से आधुनिक कृषि विपणन

राई-सरसों में संरक्षण खेती से बढ़ाएं मुनाफा

डेरी अपशिष्ट जल से टिकाऊ चारा प्रबंधन

डेरी उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा है, लेकिन इससे निकलने वाला अपशिष्ट जल अक्सर पर्यावरणीय समस्या बनकर उभरता है। सामान्यतः यह पानी दुर्गंध, कीचड़, जल स्रोतों के प्रदूषण और मच्छरों की बढ़ोतरी जैसी दिक्कतें उत्पन्न करता है। परंतु जब इसी अपशिष्ट जल को संसाधन की तरह इस्तेमाल किया जाए, तो यह कृषि और पशुपालन दोनों के लिए वरदान साबित हो सकता है। राजस्थान के उदयपुर जिले के डबोक क्षेत्र में श्री गौरी शंकर ने इसे व्यवहार में उतारकर दिखाया है। इनका नवाचार डेरी से निकलने वाले अपशिष्ट पानी को सीधे नेपियर घास की सिंचाई में उपयोग करके टिकाऊ, सस्ता और उच्च गुणवत्ता वाला चारा उत्पादन संभव बनाता है।

डेरी आधारित कृषि प्रणालियों में अपशिष्ट जल अक्सर एक चुनौती माना जाता है, लेकिन जब इसे संसाधन के रूप में पहचाना जाए, तो यही पानी चारा उत्पादन में अप्रत्याशित लाभ दे सकता है। इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए श्री गौरी शंकर ने एक ऐसी पद्धति विकसित की है, जिसमें डेरी से निकलने वाला पोषक तत्व समृद्ध पानी सीधे नेपियर घास की सिंचाई में उपयोग किया जाता है। इस पानी में पहले से मौजूद गोबर, मूत्र और जैविक तत्व पौधों के लिए प्राकृतिक खाद का काम करते हैं। नियंत्रित अंतराल में लगभग हर 20 दिनों पर दी जाने वाली इस सिंचाई से नेपियर घास को आवश्यक नमी और पोषण सहज रूप से मिलता रहता है। इस नियमित पोषण चक्र की वजह से खेत वर्षभर हरे चारे से भरे रहते हैं और पशुधन को उच्च गुणवत्ता वाला पौष्टिक चारा निरंतर उपलब्ध होता है।

प्रक्रिया

इस नवाचार की पहली कड़ी डेरी अपशिष्ट जल का सही संग्रहण है, जिसके बाद इसे पाइपलाइन या नालियों के माध्यम से खेत तक पहुंचाया जाता है। नेपियर घास जलभराव वाली परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि दिखाती है। इसलिए यह अपशिष्ट जल आधारित सिंचाई के लिए सबसे उपयुक्त फसल है। हर 20 दिनों के अंतराल पर मिलने वाला यह पानी पौधों की वृद्धि चक्र के अनुरूप उन्हें पोषण देता है। गर्मी और सर्दी के मौसम में जब नमी की कमी हो जाए, तब पूरक सिंचाई के रूप में साफ पानी का उपयोग किया जाता है, ताकि पौधों की वृद्धि निरंतर बनी रहे।

अपशिष्ट जल प्रवाह व्यवस्था युक्त फार्म

श्री गौरी शंकर ने खेत प्रबंधन में भी व्यावहारिक सुधार किया है। उन्होंने श्रमिकों को प्रशिक्षित किया है कि जहां भी खेत में खाली जगह दिखे, वहां तुरंत नेपियर पौधे लगा दिए जाएं। इससे खेत का कोई हिस्सा अनुपयोगी नहीं रहता और उत्पादन चक्र बाधित नहीं होता। यह तकनीक कम श्रम, कम लागत और अधिक उत्पादन का संयोजन प्रस्तुत करती है।

लाभ

इस नवाचार का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह पर्यावरणीय चुनौतियों को कृषि अवसरों में बदल देता है। डेरी अपशिष्ट जल का उचित उपयोग गैरवैज्ञानिक निस्तारण की समस्या को समाप्त करता है। इससे जल संसाधनों पर दबाव घटता है, क्योंकि ताजा पानी की आवश्यकता बहुत कम रह जाती है। खेत में नियमित रूप से जैविक पदार्थ पहुंचने से मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है, जिससे दीर्घकालिक उत्पादन क्षमता में सुधार होता है।

पोषण के स्तर पर देखें, तो यह मॉडल पशुधन के लिए उच्च गुणवत्ता वाला चारा उपलब्ध करवाता है। अनुसंधान परीक्षणों में नेपियर घास में 13-14 प्रतिशत प्रोटीन पाया गया, जिससे पशुओं के दूध उत्पादन, स्वास्थ्य और प्रतिरोधक क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बाहरी बाजार से चारा खरीदने की आवश्यकता लगभग समाप्त हो जाती है, जिससे उत्पादन लागत काफी कम होती है। आर्थिक दृष्टि से यह नवाचार अत्यंत लाभदायक है। सिंचाई खर्च, रासायनिक उर्वरकों पर होने वाला खर्च और

डेरी अपशिष्ट जल का संग्रहण

डेरी अपशिष्ट से उत्पादित पौष्टिक नेपियर घास

चारे की खरीद सभी तीन मदों में भारी बचत होती है। नेपियर घास तेजी से बढ़ती है और वर्ष में कई बार कटाई की जा सकती है, इसलिए इससे निरंतर आय का स्रोत भी बनता है।

संभावना

यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी है, जहां सिंचाई जल की उपलब्धता सीमित है या उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं है जैसे राजस्थान का बड़ा भाग। छोटे किसानों से लेकर व्यावसायिक डेरी इकाइयां तक इसे आसानी से अपना सकती हैं, क्योंकि इसमें महंगे उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। केवल जल प्रबंधन और फसल प्रबंधन की सरल तकनीकों को समझकर कोई भी किसान इस मॉडल को लागू कर सकता है।

वैज्ञानिक पुष्टिकरण

हालांकि यह तकनीक व्यवहार में अत्यंत सफल साबित हुई है, फिर भी बड़े पैमाने पर अपनाने से पहले वैज्ञानिक स्तर पर कुछ और अध्ययन आवश्यक हैं। इसमें अपशिष्ट जल के पोषक तत्वों की संरचना का विश्लेषण, दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव, विभिन्न नेपियर किस्मों की प्रतिक्रिया और जल प्रबंधन से जुड़े संभावित जोखिमों का मूल्यांकन शामिल है। इन अध्ययनों के आधार पर इस मॉडल को तकनीकी दिशानिर्देशों में शामिल किया जा सकता है, जिससे किसानों के लिए इसे अपनाना और भी सरल होगा।

(स्रोतः विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 9, जनवरी 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय-सूची

निदेशक की कलम से — भारतीय कृषि का स्वर्णिम वर्ष, **अनुराधा अग्रवाल**

3 पशु आहार
दुधारू पशुओं के लिए चारा चुकंदर
आनंद जेजल, मगन सिंह, मंजूनाथ शशिकांत मेलावनकी **और** अनुराग सक्सेना

8 तिलहन
राई-सरसों में संरक्षण खेती अपनाकर बढ़ाएं मुनाफा
राम लाल चौधरी, हरवीर सिंह, रामस्वरूप जाट, मोहन लाल दौतानियां **और** वासुदेव मीणा

14 मुनाफा
मछली के साथ सिंघाड़े की समन्वित खेती
अभिषेक कुमार, विवेक कुमार, अभिमान, पंकज कुमार **और** सुष्मिता रानी

20 उपयोगी
अंकुरण सुधार हेतु बीज गोलीकरण तकनीक
महिपाल चौधरी, अनुषा एम.एन., बी. कृष्णा राव, रवि के.एन. **और** एम. मधु

24 ई-नाम
किसानों के लिए आधुनिक कृषि विपणन मंच
देवेन्द्र कुमार वर्मा

30 कृषि कैलेण्डर
जनवरी के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर, अंजली पटेल **और** कविता बिष्ट

6 अभियांत्रिकी
लेजर लैंड लेवलर है बहुपयोगी मशीन
देवेश कुमार **और** राजेश चन्द्र वर्मा

11 संभावनाएं
हिमालयी क्षेत्रों में कृषि और पारिस्थितिकी का सतत विकास
सुमित गौड़, सुमित चतुर्वेदी, संबिता भट्टाचार्य, विपिन चंद्र ध्यानी **और** गुरविंदर सिंह

17 दलहन
धान परती भूमि में मेड़ों पर अरहर उत्पादन
राकेश कुमार, रघुबर साहू, देवेन्द्र मंडल, संजीव कुमार **और** प्रेम कुमार सुंदरम

22 प्रबंधन
कपास में टिंडा सड़न रोग
लिकोन कुमार आचार्य, मुकेश कुमार खोखर, अनूप कुमार **और** अजंता बिराह

26 दृष्टिकोण
जलवायु परिवर्तन, रोग प्रतिरोध और लैंगिक न्याय से कृषि का पुनरावलोकन
प्रियंका चौधरी, रवि प्रकाश **और** प्रीति उपाध्याय

नवाचार
आवरण II
डेरी अपशिष्ट जल से टिकाऊ चारा प्रबंधन

सामयिक
आवरण III
कृषि खबरें, देश-विदेश की

निदेशक की कलम से

भारतीय कृषि का स्वर्णिम वर्ष

बीता वर्ष भारतीय कृषि के लिए उपलब्धियों से भरा शानदार वर्ष रहा। मौसम की चुनौतियों, बाजार की अनिश्चितताओं और बढ़ती लागत के दबाव के बावजूद किसानों ने न केवल रिकार्ड उत्पादन बढ़ाया, बल्कि नई तकनीकों को अपनाकर कृषि को अधिक आधुनिक, टिकाऊ और लाभकारी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम भी बढ़ाए।

सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि खाद्यान्न उत्पादन में हुई ऐतिहासिक वृद्धि रही। देश ने बीते वर्ष खाद्यान्न उत्पादन में रिकार्ड उछाल दर्ज किया। कुल उत्पादन में पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 106 लाख टन की वृद्धि हुई, जो एक बड़ी कृषि उपलब्धि है। धान, गेहूं, श्री अन्न और दलहनों के उत्पादन में वृद्धि ने खाद्य सुरक्षा को और भी मजबूत बनाया। लगातार बदलते मौसम और कठिन परिस्थितियों के बीच यह उपलब्धि किसानों के कठिन परिश्रम और वैज्ञानिक प्रगति की परिचायक है।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2024-25 की अवधि में फसल उत्पादन में लगभग 8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। इसमें धान, गेहूं, मक्का, सरसों, सोयाबीन जैसी प्रमुख फसलें शामिल हैं। जहां गत वर्ष यह उत्पादन 332.30 मिलियन टन था, वहीं यह बढ़कर 357.73 मिलियन टन के स्तर तक जा पहुंचा। इसमें धान का रिकार्ड 150 मिलियन टन उत्पादन भी शामिल है, जो पिछले वर्ष के मुकाबले 12 मिलियन टन अधिक है। गेहूं की उपज 46.53 लाख टन बढ़कर 117 मिलियन टन को छूने लगी है। मक्का सहित अन्य श्री अन्न फसलों की बात करें, तो इनकी उपज इस अवधि में बढ़कर 57 मिलियन टन से बढ़कर लगभग 64 मिलियन टन तक जा पहुंची है। इसी तरह मूंग, सोयाबीन और मूंगफली का उत्पादन क्रमशः 42.44, 152.68 और 119.42 लाख टन रहा। यही नहीं ऑयल सीड मिशन की बदौलत तिलहन उपज लगभग 8 प्रतिशत बढ़कर 43 मिलियन टन को पार कर गई। वर्ष के दौरान घरेलू दलहन उत्पादन रोगों से बेहतर प्रतिरोधक क्षमता दिखाता है, जिससे उपज और पोषण सुरक्षा में सुधार होने की आशा है।

इस वर्ष की अन्य प्रमुख उपलब्धियों में एग्री स्टार्टअप का भी उल्लेख किया जा सकता है। कई एग्रीटेक स्टार्टअप फसल बाजार, लॉजिस्टिक्स, सीड मल्टीप्लीकेशन, डिजिटल फर्टिलाइजर एवं कीटनाशक सॉल्यूशंस और फार्म फाइनेंस क्षेत्रों में सक्रिय हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य एग्री स्टार्टअप ने टेक-ड्रिवन मार्केटप्लेस, सेंसर्स/इंटरनेट ऑफ थिंग्स या आईओटी और ड्रोन/रोबोटिक्स समाधानों से छोटे किसानों की उत्पादकता को बढ़ाने में योगदान दिया है।

इस वर्ष को इसलिए भी कृषि की प्रगति के लिए याद किया जाएगा, क्योंकि कृषि में कई तरह के नए अवसरों की ओर भी युवा आकर्षित हुए हैं। इनमें एग्रीबिजनेस, एग्रीटेक डेवलपमेंट, फील्ड-एग्रो-स्टार्टअप्स क्षेत्र सक्रिय रहे हैं। इनमें पोस्ट हार्वेस्ट इंजीनियरिंग, वैलीडेशन/कम्पोस्टिंग एंटरप्राइज और एग्री कंसल्टेंसी में नए रोजगारों का सृजन शामिल हैं। सरकारी प्रशिक्षण कार्यक्रमों, किसानों के लिए उद्यमिता योजनाएं और इन्क्यूबेशन हब्स ने युवाओं को स्टार्टअप शुरू करने और एग्रीटेक सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रधानमंत्री मत्स्य किसान योजना से इस क्षेत्र में निवेश तथा परियोजनाओं को भी गति मिली।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार कृषि निर्यात में भी इस वर्ष वृद्धि दर्ज की गई है। वर्ष 2024-25 के वित्तीय वर्ष में कृषि और प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स के निर्यात का आंकड़े 51.9 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। आने वाले वर्षों में इस एक्सपोर्ट लक्ष्य को और बढ़ाने की नीति अपनाई जा रही है।

पशुपालन तथा पोल्ट्री क्षेत्र का इस वर्ष में सशक्त प्रदर्शन रहा। इस वर्ष दूध, अंडा तथा मांस के उत्पादन में बढ़ोतरी देखने को मिली। कुल दूध उत्पादन बढ़कर 247 मिलियन टन, अंडा उत्पादन 149 बिलियन, मांस उत्पादन 10.50 मिलियन टन तथा ऊन 34 मिलियन कि.ग्रा. रहा। कहने की जरूरत नहीं कि इससे ग्रामीण आय के वैकल्पिक स्रोत मजबूत हुए हैं। इससे देश का दूध उत्पादन में ग्लोबल स्तर पर शीर्ष स्थान पर बने रहने का संकेत मिलता है। इन वजहों से ग्रामीण घरेलू आय में सुधार और डेरी आधारित प्रोसेसिंग में वृद्धि हुई।

मत्स्य पालन क्षेत्र में भी तेजी आई है। मात्स्यिकी विभाग के आंकड़ों के अनुसार पिछले दशक में मत्स्य उत्पादन दोगुना के करीब बढ़ा। वर्ष 2024-25 में कुल मत्स्य उत्पादन 195 लाख टन तक पहुंच गया।

समग्र रूप से देखें तो बीता वर्ष भारतीय कृषि के लिए आत्मविश्वास का वर्ष रहा, जिसने दिखा दिया कि चुनौतियों के बावजूद कृषि क्षेत्र आगे बढ़ रहा है, बदल रहा है और मजबूत भविष्य की ओर कदम बढ़ा रहा है। किसानों की मेहनत, वैज्ञानिक शोध और नीति समर्थन के संयुक्त प्रयासों ने कृषि क्षेत्र को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया है।

आप सभी को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

दुधारू पशुओं के लिए चारा चुकंदर

आनंद जेजल, मगन सिंह, मंजूनाथ शशिकांत मेलावनकी और **अनुराग सक्सेना**

"भारतीय कृषि और डेरी व्यवसाय एक-दूसरे के पूरक हैं। वर्तमान में पशुपालकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती वर्षभर गुणवत्तापूर्ण हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। विशेष रूप से मार्च से जून के ग्रीष्मकाल में बरसीम और जई जैसी पारंपरिक चारा फसलें समाप्त हो जाती हैं। इस समय ज्वार-बाजरा कटाई योग्य नहीं होते, तब हरे चारे की कमी गंभीर संकट का रूप ले लेती है। इस मौसमी संकट का व्यावहारिक समाधान चारा चुकंदर के रूप में सामने आया है। प्रस्तुत लेख में चारा चुकंदर की वैज्ञानिक खेती, उपयुक्त किस्में, पोषण प्रबंधन और पशुओं को खिलाने से जुड़ी सावधानियों पर विस्तृत चर्चा की गई है, ताकि पशुपालक इस फसल से अधिकतम और संतुलित लाभ प्राप्त कर सकें।"

चुकंदर मूल रूप से यूरोप की फसल है, जिसे वहां पहले मैंगलवूर्जेल के नाम से जाना जाता था। यह चेनोपोडिएसी परिवार का द्विवार्षिक पौधा है। सर्दियों के दौरान पशुओं को चारा उपलब्ध करवाने के लिए इसका उपयोग पारंपरिक रूप से जर्मनी, डेनमार्क और न्यूजीलैंड में व्यापक रूप से किया जाता रहा है।

चारा चुकंदर एक उच्च-उत्पादक, ऊर्जा-समृद्ध और प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति सहनशील फसल है, जो प्रति हैक्टर 150 से 200 टन तक उपज देने में सक्षम है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह खारे पानी और लवणयुक्त मृदा में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। उच्च घुलनशील शर्करा और स्वाद के कारण इसे डेरी पशुओं के लिए अमृत और मीठा सोना जैसी संज्ञाएं प्राप्त हो रही हैं। पोषण की दृष्टि से चारा चुकंदर को दुधारू पशुओं में ऊर्जा की कमी को दूर कर, दूध उत्पादन में 10 से 15 प्रतिशत तक की वृद्धि करने में प्रभावी पाया गया है।

सस्य विज्ञान अनुभाग, भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001 (हरियाणा)

किसानों के लिए प्रासंगिकता

भीषण गर्मी में चारे की उपलब्धता

यह फसल अक्टूबर-नवम्बर में बोई जाती है और मार्च-अप्रैल में जब अन्य चारा खत्म हो जाता है, तब इसकी खुदाई की जा सकती है। इसके कंदों में भंडारण क्षमता होती है, जिससे इसे मई-जून तक खिलाया जा सकता है।

लवण एवं क्षार सहनशीलता

भारत के अनेक क्षेत्रों जैसे-राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में मृदा और पानी की लवणता लगातार बढ़ रही है। चारा चुकंदर एक लवण सहनशील पौधा है, जो सोडियम को प्रभावी रूप से अवशोषित कर फसल उत्पादन के साथ-साथ मृदा सुधार में भी सहायक सिद्ध होता है।

ऊर्जा का भंडार

भारतीय पशु आहार में प्रायः ऊर्जा की कमी रहती है, जबकि प्रोटीन खली आदि से मिल जाता है। चारा चुकंदर में घुलनशील शर्करा अधिक होती है, जो इसे अनाज का किफायती और सस्ता विकल्प बनाती है।

वानस्पतिक विशेषताएं

यह फसल मुख्यतः जड़ (कंद) और हरी पत्तियों के लिए उगाई जाती है। स्वस्थ पौधे का कंद 5-8 कि.ग्रा. तक हो सकता है।

इसके कंद का लगभग 50-60 प्रतिशत भाग जमीन के ऊपर विकसित होता है, जिससे खुदाई और कटाई सरल हो जाती है।

बीज एवं प्रमुख किस्में

बीज दो मुख्य प्रकार के होते हैं बहु-भ्रूणीय (एक बीज से 2-4 पौधे, पारंपरिक प्रकार), जिसमें कंद का आकार बढ़ाने हेतु अतिरिक्त पौधे निकालने पड़ते हैं। इसकी लोकप्रिय किस्म है-जेके कुबेर, जो लाल रंग की प्रचलित भारतीय किस्म है। दूसरा प्रकार एकल-भ्रूणीय आधुनिक हाइब्रिड, जिसमें एक बीज से एक ही पौधा निकलता है, जिससे श्रम कम लगता है। इसके उदाहरण हैं: जामोन और मोनरो।

सिफारिशें

एसिडोसिस

पशु को कभी भी अचानक अधिक मात्रा में चुकंदर न खिलाएं। इससे पेट में अम्लता बढ़कर एसिडोसिस का गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है, जिससे पशु का खाना-पीना बंद हो सकता है। बचाव के लिए चुकंदर को हमेशा भरपूर सूखे चारे के साथ मिलाकर दें। आवश्यकता पड़ने पर आहार में थोड़ा मीठा सोडा भी दिया जा सकता है।

चोकिंग

कंद को कभी भी साबुत न खिलाएं, क्योंकि इससे गले में फंसने (चोकिंग) का जोखिम रहता है। इसे हमेशा काटकर या कुट्टी के रूप में दें। छोटे टुकड़े तैयार करने के लिए चॉफ कटर या कुदाल का उपयोग करें और सुनिश्चित करें कि आकार इतना छोटा हो कि पशु आसानी से चबा और निगल सके।

पशु आहार हेतु पौष्टिक चारा फसल

सारणी 1. चारा चुकंदर में पोषक तत्व प्रबंधन

पोषक तत्व	मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	प्रयोग की विधि एवं समय	महत्व
नाइट्रोजन	120-150	3 बराबर भागों में: 1/3 बुआई के समय, 1/3 विरलीकरण (30 दिनों) पर, 1/3 मृदा चढ़ाते समय (55 दिनों)	पत्तियों की तेज वृद्धि और प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक
फॉस्फोरस	60-75	पूरी मात्रा बुआई के समय	जड़ों के शुरुआती और मजबूत विकास के लिए सहायक
पोटाश	80-120	पूरी मात्रा बुआई के समय	शर्करा निर्माण और कंद का आकार बढ़ाने में सबसे महत्वपूर्ण
बोरेक्स	20-25	बुआई के समय मृदा में अच्छी तरह मिलाकर	इसकी कमी से कंद अंदर से काला व खोखला हो जाता है, जिसे हार्ट रॉट कहते हैं

उन्नत विधि से स्वस्थ उपज

रंग तथा आकार आधारित किस्में

लाल किस्में (जैसे-मोनरो, जेके कुबेर) भंडारण में श्रेष्ठ होती हैं। पीली/नारंगी किस्में, जैसे-जेरोनिमो और स्प्लेंडिड, अधिकतर जमीन के ऊपर रहती हैं, अत: कटाई आसान होती है। सफेद किस्मों में शर्करा की मात्रा अधिक पाई जाती है।

जलवायु एवं मृदा का चयन

यह ठंडी जलवायु की फसल है। इसकी बुआई के समय 15-25 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त है। कंद विकास हेतु 10-20 डिग्री सेल्सियस ठंडी रातें और धूप वाले दिन सबसे अच्छे माने जाते हैं। जमाव के बाद यह 35 डिग्री सेल्सियस तक तापमान भी सहन कर लेती है। दोमट से रेतीली दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। यह 6.0-8.0 पी-एच मान वाली मृदा में उत्कृष्ट तथा 9.0-9.5 पी-एच मान क्षारीय (ऊसर) मृदा में भी संतोषजनक उपज दे सकती है, जहां अन्य फसलें असफल हो जाती हैं। भारी चिकनी मृदा में इसकी खेती से बचना चाहिए, क्योंकि इससे कंद विकास बाधित होता है।

उन्नत उत्पादन तकनीक

अधिकतम उपज (150-200 टन/हैक्टर) प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक विधि अपनाना अनिवार्य है। यह एक कंदवर्गीय फसल है और बेहतर विकास के लिए मृदा का भुरभुरा होना आवश्यक है। खेत की तैयारी में मृदा पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करें। इसके बाद 2-3 बार कल्टीवेटर चलाकर पाटा लगा दें, ताकि मृदा भुरभुरी और समतल हो जाए। बुआई से 3-4 सप्ताह पहले 20-25 टन प्रति हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद खेत में मिला दें। इससे कंद विकास के लिए उपयुक्त जैविक आधार बन जाता है।

उत्तर भारत में बुआई का सर्वोत्तम समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर के बीच माना गया है। सितंबर में अगेती बुआई करने पर अत्यधिक गर्मी से अंकुरण प्रभावित हो सकता है, जबकि दिसंबर में पछेती बुआई करने से पैदावार घटने की आशंका रहती है।

आर्थिक लाभ

चारा चुकंदर की खेती का आर्थिक गणित किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। यह कम लागत में अधिक उपज देने वाली फसल है। इससे पशु चारे की प्रति इकाई लागत में भारी कमी आती है और डेरी व्यवसाय की कुल लाभप्रदता बढ़ती है।

हालांकि इसकी शुरुआती लागत (बीज और खेत तैयारी) बरसीम की तुलना में थोड़ी अधिक हो सकती है। इसकी विशाल पैदावार इसे सबसे किफायती और सस्ता चारा बनाती है। शोध एवं किसानों के अनुभव बताते हैं कि चारा चुकंदर खिलाने से दूध उत्पादन में 8-15 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई है। इसके साथ ही दूध में वसा तथा एस.एन.एफ. (सॉलिड नॉट-फैट) की मात्रा में भी सुधार देखा गया है। यह फसल अनाज/दाने का व्यावहारिक विकल्प बन सकती है, इसलिए किसान महंगे पशु आहार की मात्रा को 20-30 प्रतिशत तक कम कर अपनी लागत को कम कर सकते हैं।

लाभकारी है चारा चुकंदर का उत्पादन

समतल क्यारियों की अपेक्षा मेड़ पर बुआई करना अधिक वैज्ञानिक और लाभकारी सिद्ध हुआ है। इससे जल निकास बेहतर रहता है तथा कंद का बड़ा हिस्सा जमीन के ऊपर विकसित होता है।

पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50-60 सें.मी., पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. तथा बीज की गहराई 2-4 सें.मी. रखें और इससे अधिक गहरा न बोएं, जिससे अंकुरण में बाधा न आए। बीज दर 2.0-2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त मानी जाती है। चारा चुकंदर एक पोषक-गहन फसल है, जो मृदा से भारी मात्रा में पोषक तत्व अवशोषित करती है, इसलिए संतुलित उर्वरक प्रबंधन जरूरी है, ताकि उत्पादन के साथ-साथ मृदा की उर्वरता भी बनी रहे।

सिंचाई प्रबंधन

यदि बुआई से पूर्व पलेवा नहीं किया गया है, तो इसे पहली सिंचाई के तुरंत बाद करें। सर्दियों में 10-12 दिनों और बसंत/गर्मी में 7-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। यह फसल हल्की लवणता वाले पानी से भी सिंचित की जा सकती है, जिससे मीठे पानी की बचत संभव होती है।

खरपतवार नियंत्रण एवं मिट्टी चढ़ाना

फसल के शुरुआती 45-60 दिन सबसे संवेदनशील और उत्पादकता निर्धारक अवधि माने जाते हैं, जिसे क्रांतिक वृद्धि अवधि कहा जाता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन का छिड़काव बुआई के 48 घंटों के भीतर करें। इसके 25-30 दिनों बाद यदि एक स्थान पर एक से अधिक पौधे निकलें, तो अतिरिक्त पौधों को निकाल दें। इससे 55-60 दिनों बाद जब कंद बनना शुरू हो जाए, तो जड़ों पर मृदा चढ़ाएं, जिससे कंद को सहारा और बेहतर आकार मिलता है।

सारणी 2. चारा चुकंदर में पोषण मान एवं पशु चारा उपयोग की अनुशंसा

पोषण मान		
पोषक तत्व/मानक	मात्रा/मान	विशेषता/टिप्पणी
शुष्क पदार्थ	14-22 प्रतिशत	कंद की ठोस मात्रा व गुणवत्ता का संकेत
कच्चा प्रोटीन	6-10 प्रतिशत (जड़ों में), 15-18 प्रतिशत (पत्तियों में)	पत्तियां प्रोटीन का समृद्ध स्रोत
पाचनशीलता	80-85 प्रतिशत	अत्यधिक सुपाच्य, पशु स्वास्थ्य के लिए लाभकारी
ऊर्जा	12-14 एम.जे/कि.ग्रा. डीएम	मक्का दाने के बराबर ऊर्जा प्रदान करने में सक्षम
खिलाने का सही तरीका		
अवस्था	समय	मात्रा एवं विधि
शुरुआत	1-3 दिनों	1-2 कि.ग्रा. कंद टुकड़े सूखे चारे में मिलाकर
मध्य	4-7 दिनों	4-5 कि.ग्रा., गोबर की स्थिति पर नजर रखें
लक्ष्य	14 दिनों बाद	15-20 कि.ग्रा./दिनों (गाय/भैंस), 2-4 कि.ग्रा./दिनों (बकरी/भेड़)

सारणी 3. चारा चुकंदर उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण

मद	विवरण
कुल लागत	35,000-40,000 रुपये प्रति हैक्टर
कुल उत्पादन	120-150 टन कंद+30-40 टन हरी पत्तियां
प्रति कि.ग्रा. लागत	लगभग 0.30-0.40 रुपये (30-40 पैसे प्रति कि.ग्रा.)
बाजार तुलना	अन्य हरे चारे की कीमत सामान्यत: 2-5 रुपये प्रति कि.ग्रा. होती है

पशु आहार प्रबंधन

चारा चुकंदर एक सामान्य चारा न होकर, उच्च नमी वाला सांद्र आहार है। इसे खिलाने में वैज्ञानिक तरीका अपनाना जरूरी है, अन्यथा पशु में पाचन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन और गिरते भूजल स्तर के इस दौर में चारा चुकंदर किसी वरदान से कम नहीं है। यह चारा न केवल मार्च-मई के चारा संकट को दूर करता है, बल्कि खारी जमीन का सदुपयोग भी सुनिश्चित करता है। यदि किसान इसे वैज्ञानिक विधि से उगाएं और सावधानी से पशुओं को खिलाएं, तो यह न केवल उनकी आय बढ़ाने में सहायक होगा, बल्कि श्वेत क्रांति को भी नई गति देने में योगदान करेगा। ■

लेजर लैंड लेवलर है बहुपयोगी मशीन

देवेश कुमार और **राजेश चन्द्र वर्मा**

"लेजर लैंड लेवलर, जिसे लेजर समतल भी कहा जाता है। किसानों के लिए एक अत्यंत उपयोगी मशीन है। यह विशेष रूप से उन किसानों के लिए लाभकारी है, जिनके खेत पूरी तरह समतल नहीं होते और असमतल सतह के कारण फसल बुआई, उर्वरक प्रयोग तथा सिंचाई जैसे कार्यों में काफी कठिनाई आती है। ऐसे खेतों को खेती योग्य बनाने का काम लेजर लैंड लेवलर की सहायता से किया जाता है। इस मशीन का मुख्य उद्देश्य भूमि को सटीक रूप से समतल करना है, ताकि खेती के सभी कार्य सरल और प्रभावी तरीके से किए जा सकें। लेजर लैंड लेवलर से खेत समतल होने पर फसल में पानी समान रूप से पहुंचता है, जिससे सिंचाई जल की बचत होती है। इसके साथ ही उर्वरक और ईंधन की खपत भी कम हो जाती है। आज उपलब्ध सीमित कृषि भूमि का यदि लेजर तकनीक से समतलीकरण किया जाए, तो न केवल उत्पादन क्षमता बढ़ती है, बल्कि पानी, खाद और ऊर्जा जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों की भी पर्याप्त बचत की जा सकती है।"

लेजर लैंड लेवलिंग एक आधुनिक तकनीक है, जो खेत को सटीक रूप से समतल बनाकर खेती की दक्षता को बढ़ाती है। समतल खेत में पानी, खाद और ईंधन का उपयोग समान रूप से होता है, जिससे उनकी बचत होती है। यह तकनीक फसल के बेहतर अंकुरण, समान सिंचाई और अधिक पैदावार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

लाभ

- खेत के विभिन्न हिस्सों में पानी का समान रूप से उपयोग होता है, जिससे परिचालन लागत घटती है।
- भूमि समतल करने से पानी का अधिकतम उपयोग होता है और 25-30 प्रतिशत तक जल की बचत होती है, जिसके कारण सिंचाई में लगने वाली ऊर्जा (डीजल/बिजली) की भी बचत होती है।
- समतल भूमि से 3-4 प्रतिशत अतिरिक्त कृषि योग्य क्षेत्र प्राप्त हो जाता है।
- भूमि समतल होने से खरपतवार की समस्या विशेषकर धान में 40 प्रतिशत तक कम हो जाती है, जिससे निराई-गुड़ाई पर होने वाला खर्च घटता है।
- परंपरागत समतलीकरण में जहां भूमि की सतह में 5-10 सें.मी. तक विचलन होता है, वहीं लेजर समतलीकरण में यह केवल 1-2 सें.मी. रह जाता है।
- जल प्रयोग दक्षता में 50 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
- फसल उपज में 10-15 प्रतिशत तक बढ़ोतरी दर्ज की जाती है।
- पूरे खेत में समान पानी निकास और समान जलस्तर के कारण धान में खरपतवारनाशी अधिक प्रभावी होते हैं तथा पोषक तत्वों और उर्वरकों का समान प्रसार होता है।
- समतल खेत होने से बुआई का कार्य अधिक सरल और तेजी से होता है।
- समतल सतह पर बीजों का अंकुरण बेहतर होता है, जिससे फसल मजबूत और समान रूप से बढ़ती है।
- पोषक तत्व और उर्वरक पूरे खेत में समान रूप से दिए जा सकते हैं।
- निराई-गुड़ाई में कम समय और मजदूरी लगती है, जिससे लागत घटती है।
- बीज, उर्वरक, रसायन और ईंधन की खपत कम होती है।
- धान की रोपाई से पहले जमीन

वैज्ञानिक, (कृषि अभियांत्रिकी); वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, संत कबीर नगर (उत्तर प्रदेश)

को बेहतरीन रूप से तैयार करने में उपयोगी।

- परिचालन क्षमता बढ़ती है और 10-15 प्रतिशत तक समय की बचत होती है।
- सटीक भूमि समतलीकरण से फसल स्थापना में सुधार होता है।
- कृषि योग्य भूमि क्षेत्र में 3-5 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
- जल उपयोग दक्षता 50 प्रतिशत तक बढ़ती है।
- फसल तीव्रता में 40 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
- फसल उपज में उल्लेखनीय वृद्धि:
  गेहूं: 15 प्रतिशत
  गन्ना: 42 प्रतिशत
  धान: 61 प्रतिशत
  कपास: 66 प्रतिशत
- सिंचाई जल की लगभग 35-45 प्रतिशत तक बचत होती है।
- खरपतवार समस्याएं कम होती हैं तथा खरपतवार नियंत्रण की दक्षता बढ़ती है।

लेजर लैंड लेवलर के प्रमुख घटक

लेजर ट्रांसमीटर

लेजर ट्रांसमीटर एक लेजर बीम उत्सर्जित करता है, जिसे लेवलिंग बकेट पर लगे लेजर रिसीवर द्वारा प्राप्त किया जाता है। ट्रैक्टर पर लगा कंट्रोल पैनल रिसीवर से मिले सिग्नलों की व्याख्या करता है और हाइड्रोलिक कंट्रोल वाल्व को संचालित करता है, जिससे बकेट ऊपर या नीचे होता है। यह इकाई लगभग 700-800 मीटर कमांड रेडियस तक 360^0 लेजर रेफरेंस के साथ निरंतर सेल्फ-लेवल बीम भेजती है। इसमें ग्रेड सेटिंग के लिए लेजर इंडिकेटर, लो-बैटरी इंडिकेटर और मैनुअल मोड इंडिकेटर शामिल होते हैं।

लेजर लैंड लेवलर के लेजर घटकों की कनेक्टीविटी

रखरखाव

लेजर लैंड लेवलर चलाने से पहले सभी ग्रीस प्वॉइंट की अच्छी तरह जांच करें और आवश्यकतानुसार ग्रीस लगाएं। मशीन के सभी कलपुर्जों की भी जांच करें कि कोई भाग ढीला या खुला न हो (यदि हो तो उसे कस दें)। चालक को ध्यान रखना चाहिए कि लेजर लैंड लेवलर को वर्षा और नमी से बचाकर रखना आवश्यक है। वायर कनेक्शन हमेशा सावधानी से करें, ताकि वे खराब न हों। सभी ग्रीसिंग प्वॉइंट पर केवल हैंड-हेल्ड ग्रीस गन का उपयोग करें। यदि ग्रीस भीतर नहीं जा रहा है, तो प्वॉइंट को अच्छी तरह साफ करें और आवश्यकता होने पर फिटिंग बदल दें। ट्रैक्टर के तेल टैंक में तेल स्तर की नियमित जांच करें। टायर का दबाव लगभग 60 पीएसआई (415 केपीआई) रखें। सभी पिन, नट और बोल्ट की नियमित रूप से जांच करें, ताकि संचालन के समय कोई ढीलापन न रहे।

लेजर बीम रिसीवर

मास्ट की ऊंचाई पर लगाया गया यह 360^0 रिसीवर लेजर रेफरेंस प्लेन की स्थिति का पता लगाता है और उसे कंट्रोल बॉक्स तक पहुंचाता है। यह हाइड्रोलिक डबल-एक्टिंग वाल्व को निर्देशित करता है, जिससे खुरचनी ब्लेड (स्क्रेपर बकेट) समतलीकरण के लिए ऊपर-नीचे चलता है।

कंट्रोल बॉक्स

कंट्रोल बॉक्स ट्रैक्टर के फेंडर पर लगाया जाता है, ताकि ऑपरेटर उसे आसानी से संचालित कर सके। यह लेजर रिसीवर से प्राप्त सिग्नलों के आधार पर डबल-एक्टिंग हाइड्रोलिक वाल्व को सक्रिय करता है। कंट्रोल बॉक्स में मुख्य नियंत्रण इकाई, ऑन/ऑफ स्विच और सिग्नल इंडिकेटर होते हैं।

हाइड्रोलिक वाल्व असेंबली

यह असेंबली बकेट को ऊपर उठाने और नीचे करने हेतु हाइड्रोलिक सिलेंडर में तेल के प्रवाह को नियंत्रित करती है। ट्रैक्टर के हाइड्रोलिक पंप से मिलने वाला तेल सामान्यत: 2000-3000 पीएसआई दबाव पर कार्य करता है।

लेजर रिसिवर

ग्रेड सर्वेक्षण के लिए रॉड पर लगाया जाने वाला लेजर रिसिवर खेत के स्तर को निर्धारित करने में मदद करता है। इसमें एक संवेदनशील लेजर रिसीविंग पैनल होता है।

त्रिपाद स्टैंड

लेजर ट्रांसमीटर को स्थिर रूप से रखने के लिए त्रिपाद स्टैंड का उपयोग किया जाता है। इसकी सहायता से ट्रांसमीटर और रिसीवर के सिग्नलों को सटीक रूप से मिलाया जाता है तथा आवश्यकतानुसार ऊंचाई समायोजित की जाती है।

शक्ति का स्रोत

लेजर लेवलर को खींचने के लिए ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है। खेत के आकार और आवश्यक क्षमता के अनुसार आमतौर पर 50-60 एचपी या उससे अधिक के ट्रैक्टर का सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है।

टूल बॉक्स किट

लेजर लेवलर के साथ कंपनी द्वारा एक टूल किट प्रदान की जाती है, जिसमें मशीन के विभिन्न पार्ट्स सुरक्षित रूप से रखने की व्यवस्था होती है। इससे पार्ट्स की सुरक्षा और रखरखाव आसान होता है।

हिच टिलर पिन

लेजर लैंड लेवलर के संचालन के दौरान वायर कनेक्शन पूरा होने पर चालक को हिच टिलर पिन निकालकर टूल बॉक्स में सुरक्षित रखना चाहिए। कार्य समाप्त होने पर पिन को फिर से अपनी जगह पर लगा देना चाहिए, ताकि अगली बार संचालन में कोई बाधा न आए।

फील्ड ऑपरेशन और कैलिब्रेशन

भूमि समतलीकरण से बड़े खेतों का बेहतर उपयोग संभव हो जाता है। बड़े आकार के खेत कृषि क्षेत्र में वृद्धि करते हैं और खेती की परिचालन क्षमता में सुधार लाते हैं। खेत का आकार 0.1 हैक्टर से बढ़ाकर 0.5 हैक्टर करने पर उपयोगी कृषि क्षेत्र लगभग 5-7 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। इस अतिरिक्त क्षेत्र वृद्धि से किसान खेतों का पुन: आकार निर्धारण कर पाते हैं, जिससे परिचालन समय में 10-15 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है।

राई-सरसों में संरक्षण खेती अपनाकर बढ़ाएं मुनाफा

राम लाल चौधरी, हरवीर सिंह, रामस्वरूप जाट, मोहन लाल दौतानियां और **वासुदेव मीणा**

"भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में अनाज फसलों के बाद तिलहनी फसलों का दूसरा सबसे बड़ा योगदान है। पिछले एक दशक में तिलहन क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता में क्रमशः 1.60, 6.87 तथा 3.63 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई है। इसके बावजूद, फसल उत्पादन बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा में खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित उपयोग किया गया है। इसका परिणाम संसाधनों के क्षरण, गुणवत्ता और उपलब्धता में गिरावट के रूप में सामने आया है। इसके साथ ही उत्पादन लागत बढ़ने से सकल लाभ में भी कमी देखी गई है। राई-सरसों की खेती में अधिक जुताई करना लाभांश घटने का एक प्रमुख कारण है, जो कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन, तापमान वृद्धि और वैश्विक जलवायु परिवर्तन में भी योगदान देता है। मृदा की गुणवत्ता और स्वास्थ्य में लगातार गिरावट भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बन रही है। ऐसे परिदृश्य में संसाधन संरक्षण और लागत में कमी लाने वाली कृषि पद्धतियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। ऐसी स्थिति में संरक्षण खेती एक उपयुक्त एवं व्यावहारिक विकल्प के रूप में उभर रही है।"

संरक्षण खेती एक समग्र कृषि प्रणाली है, जिसमें मृदा की जुताई को न्यूनतम करना, फसल अवशेषों द्वारा मृदा को ढककर रखना तथा फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा, जल एवं पर्यावरण का संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन और ब्राजील के बाद भारत विश्व की चौथी सबसे बड़ी वानस्पतिक तेल अर्थव्यवस्था है।

भाकृअनुप-भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर-321303 (राजस्थान)

भारत सरकार के तृतीय अग्रिम अनुमान के अनुसार वर्ष 2024-25 में तिलहनों का कुल क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 30.26 मिलियन हैक्टर, 42.61 मिलियन टन और 1408 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रहे। हालांकि, बढ़ती जनसंख्या की मांग को पूरा करने के लिए घरेलू खाद्य तेल की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है। परिणामस्वरूप, भारत न केवल विश्व में तिलहन उत्पादन में अग्रणी है, बल्कि खाद्य तेलों का सबसे बड़ा आयातक देश भी बन गया है। भारत हर वर्ष खाद्य तेल की कुल खपत का लगभग 50-60 प्रतिशत आयात करता है। वर्ष 2023-24 में खाद्य तेल का आयात 15.65 मिलियन टन रहा, जो वर्ष 2010-11 (7.24 मिलियन टन) की तुलना में 115.3 प्रतिशत अधिक है।

राई-सरसों रबी की प्रमुख तिलहनी फसलों में से एक है। वैश्विक स्तर पर भारत राई-सरसों उत्पादन में 13.76 प्रतिशत के योगदान के साथ चीन और कनाडा के बाद तीसरे स्थान पर है, जबकि क्षेत्रफल के आधार पर 20.37 प्रतिशत के योगदान के साथ कनाडा के बाद दूसरे स्थान पर है।

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में राई-सरसों फसलों का उत्पादन तिलहनी फसलों में विशेष महत्व रखता है। वर्ष 2024-25 के तृतीय अग्रिम अनुमान के अनुसार, तिलहनों के कुल क्षेत्रफल एवं उत्पादन में राई-सरसों का योगदान क्रमशः 28.6 प्रतिशत (8.63 मिलियन हैक्टर) और 31.8 प्रतिशत (12.61 मिलियन टन) रहेगा, तथा कुल खाद्य तेल उत्पादन में इसका योगदान लगभग 33.8 प्रतिशत रहेगा। इस प्रकार, राई-सरसों फसलें देश की खाद्य तेल आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

पिछले कई वर्षों में उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों के बावजूद परंपरागत खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित उपयोग देखा गया है। इसका परिणाम भूमि की उपजाऊ शक्ति और फसल गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की घटती मात्रा, भूजल स्तर में गिरावट, खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप, बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य, मौसम की विषमताएं और उत्पादन अस्थिरता के रूप में सामने आया है। इसके साथ ही, संसाधनों के असंतुलित प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में वृद्धि हुई है एवं किसानों की उत्पादन लागत बढ़ने के साथ उनकी आय घटती जा रही है।

ऐसे परिदृश्य में संसाधन संरक्षण और लागत में कमी लाने वाली कृषि प्रणालियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। संरक्षण खेती इस संदर्भ में एक व्यावहारिक विकल्प के रूप में उभर रही है। यह प्रणाली पोषक तत्वों, जल और ऊर्जा जैसे प्रमुख आदानों की बचत सुनिश्चित करती है तथा वैश्विक स्तर पर इसके सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं। अतः संरक्षण खेती के इन लाभों को राई-सरसों जैसी उच्च प्राथमिकता वाली फसलों में भी अपनाकर उत्पादन स्थिरता, संसाधन संरक्षण और किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया जा सकता है।

बाजरा कटाई के बाद जीरो-टिल ड्रिल मशीन से सरसों की बुआई

संरक्षण खेती को सफल बनाने के लिए स्थान-विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न नए-नए तरीकों को अपनाया जाता है। यह प्रणाली तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित हैः

न्यूनतम जुताई

लगातार जुताई से मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण प्रभावित होते हैं, जिससे मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता है, उर्वरता और उत्पादन क्षमता घटती है एवं मृदा क्षरण बढ़ता है। संरक्षण खेती में न्यूनतम जुताई अपनाने से मृदा स्वास्थ्य बेहतर रहता है। इसके साथ ही ईंधन और मानव श्रम की बचत भी होती है।

स्थायी फसल अवशेष आवरण

संरक्षण खेती में मृदा सतह का लगभग 30 प्रतिशत भाग फसल अवशेषों से ढका रहता है। यह आवरण वाष्पीकरण को कम करता है, सिंचाई की आवश्यकता को घटाता है और वर्षा, धूप तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों से मृदा की रक्षा करता है। फसल अवशेष मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने में सहायक होता है। इससे जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है और मृदा स्वास्थ्य मजबूत होता है।

चुनौतियां

- **कृषि यंत्रों की अनुपलब्धताः** जीरो- टिल ड्रिल मशीन, रेज्ड बेड प्लांटर और हैप्पी सीडर जैसी आवश्यक मशीनों की सीमित उपलब्धता।
- **मानसिकता में बाधाः** किसान परंपरागत अधिक जुताई को अधिक उपज का कारण मानते हैं।
- **लघु एवं सीमांत किसानः** छोटे खेतों के कारण संरक्षण खेती को अपनाने में कठिनाई।
- **यंत्रों का रखरखावः** कृषि यंत्रों की नियमित जांच, परीक्षण और उचित रखरखाव की कमी।
- **तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमीः** किसानों, प्रसार अधिकारियों और कृषि वैज्ञानिकों को उपयुक्त प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव।
- **उच्च लागतः** संरक्षण खेती के लिए आवश्यक यंत्रों की अधिक कीमत।
- **प्रसार में उदासीनताः** राज्य कृषि विभाग की संरक्षण खेती के प्रसार में अनियमितता या कम सक्रियता।

सरसों की बुआई के बाद खेत में जीरो-टिल ड्रिल मशीन द्वारा तैयार आवरण

रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा सरसों की बुआई के बाद खेत में जमाव

टिकाऊ एवं लाभदायक फसल प्रणाली

संरक्षण खेती में लाभदायक फसलचक्र आवश्यक है। फसल अवशेष उत्तरवर्ती फसलों के लिए सतह आवरण और पशुओं के लिए चारा उपलब्ध करवाते हैं। फसल विविधीकरण से मृदा की उर्वराशक्ति बनी रहती है, पोषक तत्व और जल उपलब्धता बढ़ती है एवं कीट तथा रोगों का प्रकोप कम होता है।

संरक्षण खेती के सिद्धांतों को लागू करने के लिए विभिन्न संसाधन संरक्षण तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे-लेजर भूमि पाटा द्वारा भूसमतलीकरण, शून्य जुताई के लिए जीरो-टिल, रेज्ड बेड प्लांटर, हैप्पी सीडर, टर्बो सीडर जैसे उपकरणों का प्रयोग, सिंचाई प्रणालियों में बूंद-बूंद सिंचाई, फव्वारेदार और सूक्ष्म सिंचाई जैसी तकनीकों के माध्यम से संसाधनों का इष्टतम उपयोग और प्रबंधन संभव होता है। इससे मृदा, जल और पर्यावरण की गुणवत्ता बनी रहती है तथा कृषि उत्पादकता में स्थायित्व आता है।

राई-सरसों फसलों में संरक्षण खेती अपनाने के लाभ

कम जुताई और ऊर्जा बचत

परंपरागत राई-सरसों खेती में लगभग 8-10 बार ट्रैक्टर द्वारा जुताई की जाती है। संरक्षण खेती में शून्य जुताई या न्यूनतम जुताई की जाती है। जीरो टिल ड्रिल मशीन या रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा बीज और उर्वरक को एक साथ अलग-अलग गहराई पर बोया जाता है, जिससे ईंधन (डीजल) और श्रम की बचत होती है। इससे किसान प्रति हैक्टर लगभग 10-12 हजार रुपये और ऊर्जा की बचत कर सकते हैं।

उत्पादकता और लाभ में वृद्धि

शून्य जुताई एवं फसल अवशेषों को सतह पर बनाए रखने से सरसों की पैदावार और शुद्ध लाभ में क्रमशः लगभग 15-20 प्रतिशत वृद्धि होती है।

जल संरक्षण और सूखे से सुरक्षा

मृदा सतह पर फसल अवशेषों के आवरण के कारण नमी बनी रहती है और वाष्पीकरण से हानि कम होती है। इससे सिंचाई जल की बचत होती है और फसल अल्पकालीन सूखे से सुरक्षित रहती है।

मृदा उत्पादकता और पोषक तत्व संरक्षण

संरक्षण खेती अपनाने से मृदा की उत्पादकता बढ़ती है। इसके साथ ही जल, ऊर्जा और मृदा की उर्वरता का संरक्षण भी होता है।

फसल विविधीकरण और रोग नियंत्रण

फसल विविधीकरण से मृदा स्वास्थ्य

संरक्षण खेती पद्धति के अंतर्गत लहलहाती सरसों की फसल

मक्का कटाई उपरांत खड़ी फसल अवशेषों में रेज्ड बेड प्लांटर द्वारा सरसों की बुआई

में सुधार होता है और मृदाक्षरण कम होता है। इसके अलावा कीट, रोग और खरपतवारों का प्रकोप भी घटता है।

जैविक गतिविधि और पोषक तत्वों में सुधार

संरक्षण खेती में मृदा में जैविक कार्बन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की उपलब्धता बढ़ती है। इसके साथ ही लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्या और एंजाइम गतिविधियां (सेल्यूलोज, क्षारीय फॉस्फेटेज, डिहाइड्रोजनेज, यूरेस फ्लेवेसिन, डायसेंटटे हाइड्रोलाइन आदि) भी पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक होती हैं।

समय, श्रम और गुणवत्ता में लाभ

संरक्षण खेती में समय, धन और श्रम की बचत होती है। इसके साथ ही उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।

पर्यावरण संरक्षण

पारंपरिक खेती की तुलना में संरक्षण खेती में ग्रीनहाउस गैसों (कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड) का उत्सर्जन कम होता है। इससे तापमान वृद्धि और वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

राई-सरसों भारत की प्रमुख तिलहनी फसल है, जिसका अर्थव्यवस्था में विशेष योगदान है। परंपरागत अधिक जुताई आधारित खेती से उत्पादन लागत बढ़ती है, मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता है और पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ता है। ऐसे में संरक्षण खेती, जिसमें शून्य जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन और संसाधन संरक्षण जैसी तकनीकें अपनाई जाती हैं, टिकाऊ उत्पादन के साथ पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करती है। इससे उत्पादन लागत में 10-12 हजार रुपये प्रति हैक्टर की बचत, पैदावार और शुद्ध लाभ में क्रमशः 15-20 प्रतिशत की वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य में सुधार और जल, पोषक तत्व तथा ऊर्जा की बचत होती है। साथ ही, संरक्षण खेती ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करके जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी मदद करती है। किसानों तक इस पद्धति को पहुंचाने के लिए प्रभावी प्रचार-प्रसार और सरकारी अनुदान आवश्यक हैं। ■

संरक्षण खेती

संरक्षण खेती एक बेहद लाभकारी कृषि पद्धति है। इसमें न्यूनतम जुताई, फसल अवशेषों का सही प्रबंधन और फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा, जल और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया जाता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य उत्पादन की निरंतरता बनाए रखना और संसाधनों का स्थायी उपयोग सुनिश्चित करना है। संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी और निचली सतह में प्राकृतिक जैविक गतिविधियों को बढ़ाने पर आधारित है। इससे न केवल फसल की पैदावार अधिकतम बनी रहती है, बल्कि भूमि की उर्वरता और संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहती है। इस पद्धति के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण सुनिश्चित किया जा सकता है। इसमें उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम उपयोग किया जाता है। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण, कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, पौष्टिकता, उत्पादकता और संसाधन उपयोग दक्षता को बढ़ाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप भूमि का स्वास्थ्य बेहतर रहता है, पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है और जलवायु परिवर्तन, भुखमरी व कुपोषण जैसी गंभीर समस्याओं से निपटने में सहायता मिलती है।

हिमालयी क्षेत्रों में कृषि और पारिस्थितिकी का सतत विकास

सुमित गौड़[2], सुमित चतुर्वेदी[1], संबिता भट्टाचार्य[2], विपिन चंद्र ध्यानी[1] और **गुरविंदर सिंह[1]**

"भारत के उत्तर एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र देश के कुल कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं। ये क्षेत्र अपनी विशिष्ट जैव विविधता, पर्वतीय पारिस्थितिकी, वन संसाधनों और कृषि संभावनाओं के लिए विख्यात हैं। हालांकि, वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों का अनुचित उपयोग, मृदा उर्वरता में गिरावट और फसल अवशेषों के दुरुपयोग के कारण कृषि और पारिस्थितिकी दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इन क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग, जल संसाधनों का दोहन, पारंपरिक फसलचक्र में गिरावट और वनों की अंधाधुंध कटाई जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं। हालांकि, फसल विविधीकरण, जल संरक्षण, फसल अवशेष प्रबंधन और वन संसाधनों के सतत उपयोग जैसी रणनीतियों को अपनाकर इन चुनौतियों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। यह अध्ययन भौगोलिक ऊंचाई के आधार पर संसाधनों की उपलब्धता, प्रमुख समस्याओं और उनके समाधान का क्षेत्रवार विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही इसका प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम लागत पर किसानों को अधिकतम लाभ पहुंचाना है, जिससे उनकी वार्षिक आय में उल्लेखनीय वृद्धि संभव हो सके।"

भारत के उत्तर और उत्तर-पूर्वी हिमालयी क्षेत्र, जिनमें हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मेघालय, नगालैंड, मणिपुर और मिजोरम सम्मिलित हैं, देश की कृषि और पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों का दोहन, मृदा उर्वरता में गिरावट, वनों की कटाई तथा फसल अवशेष प्रबंधन की कमी जैसी चुनौतियां इन क्षेत्रों की कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही हैं। पारंपरिक एकल फसल प्रणाली न केवल किसानों की आय को सीमित करती है, बल्कि फसल विफलता और पर्यावरणीय प्रदूषण का संकट भी बढ़ाती है।

इस अध्ययन में हिमालयी क्षेत्र को ऊंचाई के आधार पर तीन जोनों को निचला (600-1200 मीटर), मध्य (1200-1800 मीटर) और उच्च हिमालय (1800-3500 मीटर) में विभाजित कर प्रत्येक जोन के संसाधन, समस्याएं और उनके समाधान पर चर्चा की गई है।

[1]प्राध्यापक; [2]शोध छात्र; सस्य विज्ञान विभाग, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

फसल अवशेषों का उपयोग करके निचले हिमालय क्षेत्र में बायोचार उत्पादन, एकीकृत फसल प्रणाली और वैकल्पिक आय स्रोतों के माध्यम से किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है।

मध्य हिमालय में सीमित जल संसाधनों के बावजूद बागवानी, औषधीय और सुगंधित पौधों की खेती से स्थिर आय सुनिश्चित होती है। उच्च हिमालय में कठोर जलवायु के अनुसार ऊनी पशुपालन, केसर, जैविक चाय और औषधीय फसलें अधिक लाभकारी साबित होती हैं।

इस प्रकार, पारंपरिक प्रणालियों की तुलना में एकीकृत कृषि प्रणाली न केवल किसानों की आय को 2 से 5 गुना तक बढ़ाती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और सतत विकास को भी प्रोत्साहित करती है।

उत्तर और उत्तर-पूर्वी भारत में संसाधनों की उपलब्धता

भारत के हिमालयी क्षेत्र को उनकी ऊंचाई, जलवायु और कृषि विशेषताओं के आधार पर तीन मुख्य क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

निचला हिमालयी क्षेत्र (600-1200 मीटर)

इस क्षेत्र में गंगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियों की उपस्थिति के कारण जल संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसी वजह से धान-गेहूं जैसी जलप्रधान फसलें यहां प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं। हालांकि, अत्यधिक भूजल दोहन, रासायनिक उर्वरकों का अधिक उपयोग और फसल अवशेष जलाने जैसी समस्याएं लगातार बढ़ रही हैं। इसलिए किसानों के लिए संसाधनों का संतुलित उपयोग अत्यंत आवश्यक है, ताकि वे अधिकतम लाभ कमा सकें।

यदि किसान मिश्रित कृषि, मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन और मत्स्य पालन जैसी गतिविधियां अपनाएं, तो उनकी आय 5 से 6 गुना तक बढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त, औषधीय पौधे और फलदार वृक्षों के साथ फसल अवशेषों का सही प्रबंधन जैसे-मशरूम उत्पादन और बायोचार निर्माण से भी अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। इन गतिविधियों के माध्यम से कार्बन क्रेडिट अर्जित करना संभव है, जिसका भारतीय मुद्रा में मूल्य लगभग 1000 से 2500 रुपये प्रति क्रेडिट है।

सारणी-1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जहां एक ओर वर्षभर में धान-गेहूं

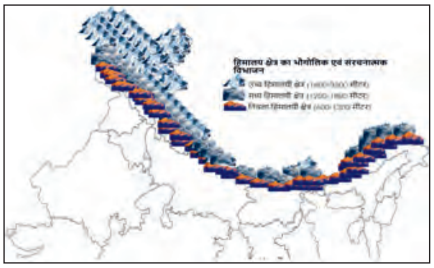

हिमालय क्षेत्र का भौगोलिक एवं संरचनात्मक विभाजन

उच्च हिमालयी क्षेत्र (1800-3500 मीटर)

इस क्षेत्र की जलवायु कठोर होती है और कृषि योग्य भूमि सीमित होती है। लेकिन यहां की विशिष्ट परिस्थितियां औषधीय फसलें, पशुपालन और दुर्लभ जड़ी-बूटियों की खेती के लिए अनुकूल हैं। इस क्षेत्र में कुटकी, अतीस, जटामांसी, तेजपत्ता और कस्तूरी बूटी जैसी औषधीय फसलें उगाई जा सकती हैं। ये आयुर्वेदिक दवाओं में उपयोग की जाती हैं और उच्च मूल्य पर बिकती हैं। ऊनी पशुपालन यहां के किसानों के लिए आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है। भेड़ और याक से प्राप्त ऊन और डेरी उत्पादों की बाजार में अच्छी मांग रहती है। विशेष रूप से पश्मीना ऊन अत्यधिक मूल्यवान होती है और इससे बने कपड़े वैश्विक बाजार में ऊंचे दामों पर बेचे जाते हैं। इस क्षेत्र की जलवायु जैविक चाय, केसर और हिमालयी जड़ी-बूटियों की खेती के लिए भी उपयुक्त है। जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए, किसान इन फसलों की खेती कर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

मशरूम उत्पादन का बढ़ता दायरा

एकल पारंपरिक कृषि प्रणाली के माध्यम से शुद्ध लाभ 40,000 से 50,000 रुपये/हैक्टर तक अर्जित किया जा सकता है, वहीं दूसरी ओर संसाधनों के समुचित उपयोग और एकीकृत कृषि प्रणाली के प्रभावी क्रियान्वयन द्वारा 94,000 से 1,17,000 रुपये/हैक्टर तक का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली पर्यावरण की दृष्टि से भी अधिक अनुकूल एवं सतत विकास की दिशा में सहायक सिद्ध होती है।

मध्य हिमालयी क्षेत्र (1200-1800 मीटर)

मध्य हिमालयी क्षेत्र में जल संसाधन सीमित हैं और कृषि मुख्य रूप से वर्षाजल पर निर्भर करती है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में अनिश्चितता, मृदा कटाव और जंगलों का क्षरण यहां की प्रमुख चुनौतियां हैं।

इस क्षेत्र में अधिक फसलों का उत्पादन करने की अपेक्षा फलों की खेती किसानों के लिए अधिक लाभकारी साबित हो सकती

सारणी 1. हिमालयी क्षेत्रों के लिए प्रस्तावित एकीकृत कृषि प्रणाली का लागत व लाभ विश्लेषण (प्रति हैक्टर)

कृषि प्रणाली	(रुपये/हैक्टर/वर्ष)		
पारंपरिक कृषि प्रणाली	अनुमानित खर्च	संभावित आय	शुद्ध लाभ
धान-गेहूं (1 हैक्टर)	60,000-80,000	1,00,000-1,30,000	40,000-50,000
एकीकृत कृषि प्रणाली			
मक्का-गेहूं-दलहन (0.60 हैक्टर)	30,000-34,000	55,000-68,000	25,000-34,000
मशरूम (0.005 हैक्टर)	13,000-15,000	35,000-40,000	30,000-34,000
बायोचार उत्पादन (0.10 हैक्टर)	7,000-8,000	14,000-18,000	30,000-34,000
मधुमक्खी पालन (20 बॉक्स, 0.002 हैक्टर)	9,000-10,000	24,000-28,000	30,000-34,000
बागवानी (मौसमी फल/सब्जी उत्पादन, 0.707 हैक्टर)	15,000-18,000	40,000-48,000	30,000-34,000
कुल (1 हैक्टर)	74,000-85,000	1,68,000-2,02,000	94,000-1,17,000

बायोचार निर्माण के माध्यम से अवशेष प्रबंधन

है। इसके साथ ही इन फलों को प्रसंस्करण जैसे-जैम, जूस और ड्राई फ्रूट्स के रूप में बेचकर अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है।

मध्य हिमालयी क्षेत्र में औषधीय और सुगंधित पौधों की खेती भी एक लाभकारी व्यवसाय है। अश्वगंधा, तुलसी, मेंथा, स्टीविया, लेमनग्रास, रोजमेरी और कैमोमाइल जैसी फसलें औषधीय और कॉस्मेटिक उद्योग में व्यापक रूप से उपयोग की जाती हैं और इनकी बाजार में उच्च मांग है।

सारणी-2 के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि इन क्षेत्रों में पारंपरिक कृषि प्रणाली की अपेक्षा एकीकृत कृषि प्रणाली के माध्यम से समान वार्षिक खर्च में कहीं अधिक शुद्ध लाभ अर्जित किया जा सकता है।

पारंपरिक कृषि प्रणाली के अंतर्गत जहां 40,000 से 50,000 रुपये के वार्षिक खर्च पर कुल आय सीमित रूप से प्राप्त होती है और शुद्ध लाभ मात्र 20,000 से 30,000 रुपये तक सीमित रहता है, वहीं एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत समान वार्षिक खर्च में शुद्ध लाभ 52,000 से 60,000 रुपये तक पहुंच सकता है। यह पारंपरिक प्रणाली की तुलना में लगभग 2 से 3 गुना अधिक है। इसके साथ एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर किसान अपनी आय को और भी अधिक बढ़ा सकते हैं, जिससे उन्हें आर्थिक स्थिरता और पर्यावरणीय संतुलन दोनों प्राप्त होते हैं।

पॉलीहाउस में सब्जी उत्पादन

सारणी 2. मध्य हिमालयी क्षेत्र के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली का लागत व लाभ विश्लेषण (प्रति हैक्टर)

कृषि प्रणाली	(रुपये/हैक्टर/वर्ष)		
पारंपरिक कृषि प्रणाली	अनुमानित खर्च	आय	शुद्ध लाभ
धान-गेहूं (1 हैक्टर)	40,000-50,000	60,000-80,000	20,000-30,000
एकीकृत कृषि प्रणाली			
लघु मक्का (0.40 हैक्टर)	16,000-18,000	35,000-40,000	19,000-22,000
वृक्ष/गन्ना (0.20 हैक्टर)	8,000-9,000	20,000-22,000	12,000-13,000
वनीकरण एवं ग्रीनहाउस (0.20 हैक्टर)	7,000-8,000	15,000-18,000	8,000-10,000
मशरूम एवं एग्रोफॉरेस्ट्री (0.10 हैक्टर)	4,000-4,500	10,000-12,000	5,000-7,500
औषधीय एवं सुगंधित पौधे (0.10 हैक्टर)	5,000-6,000	12,000-14,000	7,000-8,000
कुल (1 हैक्टर)	40,000-45,500	92,000-1,06,000	52,000-60,500

सारणी 3. उच्च हिमालयी क्षेत्रों के लिए प्रस्तावित एकीकृत कृषि प्रणाली का लागत व लाभ विश्लेषण (प्रति हैक्टर)

कृषि प्रणाली	(रुपये/हैक्टर/वर्ष)		
पारंपरिक कृषि प्रणाली	अनुमानित खर्च	संभावित आय	शुद्ध लाभ
जौ व आलू के साथ मटर (1 हैक्टर)	30,000-40,000	50,000-70,000	20,000-30,000
एकीकृत कृषि प्रणाली			
कुटकी और जटामांसी (0.30 हैक्टर)	10,000-12,000	10,000-12,000	12,000-14,000
केसर की खेती (0.10 हैक्टर)	5,000-6,000	5,000-6,000	7,000-9,000
ऊनी पशुपालन (0.50 हैक्टर)	12,000-15,000	12,000-15,000	13,000-15,000
जैविक चाय उत्पादन (0.10 हैक्टर)	3,000-5,000	3,000-5,000	5,000-6,000
कुल (1 हैक्टर)	30,000-38,000	67,000-81,000	37,000-43,000

सारणी-3 से यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक फसल प्रणाली की तुलना में एकीकृत कृषि प्रणाली अपनाने पर किसानों को कहीं अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। यह प्रणाली न केवल आर्थिक रूप से लाभदायक सिद्ध होती है, बल्कि उपलब्ध संसाधनों के कुशल उपयोग, आय के विविध स्रोतों के सृजन तथा टिकाऊ एवं जलवायु सहिष्णु कृषि विकास को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इन तीनों कृषि क्षेत्रों में किसानों के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वे प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण एवं संतुलित उपयोग करते हुए अपनी आय में कई गुना वृद्धि करें। बागवानी, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती, पशुपालन, जैविक खेती तथा जैविक उत्पादों की ब्रांडिंग जैसे उपाय अपनाकर न केवल आर्थिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, बल्कि पर्वतीय पारिस्थितिक संतुलन को भी बनाए रखा जा सकता है।

वैज्ञानिक एवं सतत कृषि पद्धतियों को अपनाने से किसान कठिन हिमालयी परिस्थितियों में भी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकते हैं और अपनी आजीविका को अधिक सुरक्षित कर सकते हैं। यदि पारंपरिक खेती के स्थान पर बहु-आयामी एकीकृत कृषि प्रणाली लागू की जाए, तो हिमालयी किसान अपनी आय को लगभग 5 से 20 गुना तक बढ़ा सकते हैं। ■

मछली के साथ सिंघाड़े की समन्वित खेती

अभिषेक कुमार[1], विवेक कुमार[1], अभिमान[1], पंकज कुमार[2] और **सुष्मिता रानी[3]**

"देश की बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण जल और भूमि जैसे कृषि संसाधन लगातार सीमित होते जा रहे हैं और प्रदूषण की चुनौती भी बढ़ रही है। देश की लगभग आधी आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है, जिन्हें प्रोटीनयुक्त पोषक आहार के साथ-साथ रोजगार के बेहतर अवसरों की भी आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश किसानों के पास भूमि कम होने और छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होने के कारण एकल कृषि प्रणाली अब आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं रही। इस स्थिति में ऐसी नीतियों और तकनीकों की आवश्यकता है, जो कम पूंजी निवेश के साथ अधिक उत्पादन और अधिक रोजगार सृजन की क्षमता प्रदान करें तथा उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करते हुए पर्यावरण संतुलन भी बनाए रखें। इस दिशा में मत्स्य पालन के साथ सिंघाड़े की समन्वित खेती एक उपयोगी और व्यावहारिक मॉडल साबित हो सकती है। यह प्रणाली सीमित जलभूमि संसाधनों का कुशल उपयोग कर किसानों को आर्थिक स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ ग्रामीण स्तर पर पोषण उपलब्धता और पर्यावरण अनुकूल कृषि को बढ़ावा देने में सहायक साबित हो सकती है।"

सिंघाड़ा एक मौसमी जलीय नकदी फसल है, जिसे पानी फल या एक्वाचेस्टनट के नाम से भी जाना जाता है। इसका उत्पादन भारत में विशेष रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल के तराई क्षेत्रों, पाकिस्तान और दक्षिण एशिया सहित विश्व के अनेक देशों में किया जाता है। यह ट्रैपिएसी परिवार का एक जलीय पौधा है और इसका वैज्ञानिक नाम ट्रापा है। भारत में मुख्यत: इसकी दो प्रजातियां प्रचलित हैं:

- दो सींग या कांटे वाली प्रजाति (ट्रापा बाइस्पिनोसा)
- चार सींग या कांटे वाली प्रजाति (ट्रापा क्वाड्रिस्पिनोसा)

[1]सहायक प्राध्यापक, जलकृषि विभाग; [2]सहायक प्राध्यापक, जलीय जीव स्वास्थ्य प्रबंधन विभाग; [3]सहायक प्राध्यापक, मत्स्य कायिकी एवं जीव रसायन विभाग, महाविद्यालय, अर्राबाड़ी, किशनगंज

सिंघाड़े का उपयोग मुख्य रूप से खाद्य में किया जाता है। भारतीय आहार घी में तला हुआ सिंघाड़ा एक स्वादिष्ट व्यंजन माना जाता है। इसके अलावा इसकी सब्जी और हलवा भी लोकप्रिय हैं। सिंघाड़े में लगभग 4.7 प्रतिशत प्रोटीन, 23.3 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.3 प्रतिशत वसा, 0.02 प्रतिशत कैल्शियम, 0.15 प्रतिशत फॉस्फोरस और लगभग 70 प्रतिशत नमी पाई जाती है। पौष्टिक और गुणवत्तापूर्ण होने के कारण इसका खाद्य महत्व अत्यधिक है। इसकी गुणवत्ता किसी भी अन्य खाद्य उत्पाद से कम नहीं आंकी जा सकती।

भारत में सिंघाड़े की खेती पारंपरिक रूप से लंबे समय से की जाती रही है। सामान्यत: तालाबों में इसकी खेती मोनोकल्चर पद्धति से की जाती है, जिससे किसानों को सीमित आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। यदि मत्स्य के साथ सिंघाड़े की समन्वित खेती अपनाई जाए, तो एक ही तालाब से मत्स्य और सिंघाड़े का उत्पादन प्राप्त कर किसानों की आय को दोगुना किया जा सकता है। यह प्रणाली संसाधनों के बेहतर उपयोग के साथ-साथ अधिक लाभ सुनिश्चित करने का एक प्रभावी मॉडल बन सकती है।

तालाब का चयन

रेतीली और चट्टानी मृदा वाले तालाबों को छोड़कर, गांवों में स्थित सभी कीचड़युक्त मृदा वाले तालाब सिंघाड़े की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके अलावा सड़क और रेलवे लाइन के किनारे मौजूद ऐसे गड्ढे, जिनमें वर्षा के बाद 6 से 8 महीनों तक पानी भरा रहता है, का भी उपयोग किया जा सकता है। औसतन 1.0 से 1.5 मीटर गहराई वाले तालाब सिंघाड़े खेती के लिए अधिक अनुकूल माने जाते हैं। मौसमी तालाबों की तुलना में बारहमासी तालाब, जिनमें पूरे वर्ष

मत्स्य आहार प्रबंधन

सिंघाड़े की फसल की कटाई के बाद मछलियों की बेहतर और तेज वृद्धि के लिए कृत्रिम पूरक आहार दिया जाता है। इसमें धान की ब्रान, सरसों की खली, सोयाबीन मील, फिश मील और मिनरल मिक्सचर को 40:40:15:4.7:0.3 के अनुपात में मिलाकर तैयार किया जाता है। इस मिश्रित आहार को आमतौर पर तालाब में संचय की गई मछलियों के कुल वजन के 3 से 5 प्रतिशत की दर से प्रतिदिन खिलाया जाता है। इसके विकल्प के रूप में धान की कनकी और मुर्गी दाना को 3:1 के अनुपात में भी उपयोग में लाया जा सकता है। आहार को प्लास्टिक के बोरे में छोटे छिद्र बनाकर या किसी चौड़े बर्तन अथवा टोकरी में रखकर तालाब में देना अधिक उपयोगी होता है।

जल उपलब्ध रहता है, अधिक उपयुक्त और स्थिर उत्पादन देने वाले होते हैं।

तालाब की तैयारी

सिंघाड़े की सफल खेती के लिए तालाब की सफाई आवश्यक है। तालाब को सभी प्रकार की जलीय वनस्पतियों और जलीय जीवों से मुक्त रखना चाहिए। सिंघाड़ा पूरी सतह पर फैल जाने के कारण जल में सूर्य का प्रकाश पहुंचने में बाधा उत्पन्न करता है। इससे जल में ऑक्सीजन की मात्रा तथा मछलियों के प्राकृतिक आहार, विशेषकर प्लवकों का स्तर कम हो सकता है।

संतुलन बनाए रखने के लिए तालाब में कुछ तकनीकी उपाय अपनाने चाहिए। तालाब के बीच या किनारे की ओर कुछ हिस्सों को बांस या रस्सी से घेरकर खुला छोड़ देना चाहिए, ताकि इन घेरों के अंदर सिंघाड़ा न फैल सके और प्रकाश तथा वायु संचार बना रहे। तालाब में यदि जल भरने और निकालने की व्यवस्था हो, तो यह और भी लाभकारी

सिंघाड़े की स्वस्थ उपज

होता है। जल के प्रवेश और निकास द्वार पर तार या नायलॉन की मजबूत जाली लगाना जरूरी है। इससे अवांछित जलीय जीव तालाब प्रणाली में प्रवेश न कर सकें और समन्वित खेती बाधारहित संचालित हो सके।

सिंघाड़े लगाने की विधि

सिंघाड़े लगाने की प्रक्रिया बीज प्रबंधन से शुरू होती है। जनवरी में परिपक्व फल को मिट्टी के घड़े या बैरल में रखकर उसमें पानी भर दिया जाता है। घड़े को छायादार और नमी वाले स्थान पर लगभग एक महीने तक रखा जाता है। घड़े में पानी भरने के बाद बीज को 2 से 3 दिनों तक स्थिर जल में रखा जाता है। इसके बाद 5 से 6 दिनों तक पानी को प्रतिदिन बदलना आवश्यक होता है। इस दौरान यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बीज सूखने न पाए। यह क्रिया तब तक दोहराई जाती है, जब तक बीज की ऊपरी सतह सड़ने न लगे। इसके बाद बीज का अंकुरण प्रारंभ हो जाता है।

नर्सरी तालाब

जैसे ही बीज का अंकुरण शुरू हो जाता है, उसे घड़े से निकालकर नर्सरी तालाब, पोखर या छोटे गड्ढों में स्थानांतरित किया जाता है, जहां लगभग डेढ़ से दो फीट पानी भरा रहता हो। सामान्यत: अंकुरित बीज को मार्च या अप्रैल में नर्सरी में डाला जाता है। अंकुरित बीज जलाशय की तली में कीचड़ के भीतर बैठ जाते हैं, जहां से जड़ और तने का विकास शुरू होता है।

सिंघाड़े का तना ऊपर की ओर बढ़ता है और उससे निकलने वाली पत्तियां कुछ समय बाद जल सतह पर आ जाती हैं। इसके साथ ही पौधे की तनों की गांठों से धीरे-धीरे नए पौधे भी विकसित होने लगते हैं। यही विकसित भाग पुन: तली की मृदा अथवा कीचड़ से संपर्क बनाकर जड़ पकड़ लेते हैं। इस तरह एक ही पौधे से अनेक नए पौधे तैयार हो जाते हैं, जिससे रोपण सामग्री की उपलब्धता बढ़ती है और तालाब में सिंघाड़ा फैलाव सघन होता जाता है।

प्रतिरोपण

जून-जुलाई में सिंघाड़े के पौधों को नर्सरी तालाब या पोखरों से निकालकर बड़े तालाबों में प्रतिरोपित किया जाता है। पौधे से पौधे की दूरी तालाब की मृदा की उर्वरता पर निर्भर करती है, फिर भी 80 से 120 सें.मी. की दूरी सामान्यत: उपयुक्त मानी जाती है। एक हैक्टर जल क्षेत्र वाला नर्सरी तालाब लगभग 8 से 10 हैक्टर जल क्षेत्र के लिए पर्याप्त संख्या में स्वस्थ पौधे प्रदान कर सकता है।

सिंघाड़ा-मछली समन्वित प्रणाली

इसके अलावा बीज रोपण का एक पारंपरिक तरीका भी प्रचलित है, जिसमें परिपक्व बीज को सीधे बड़े तालाब में डाल दिया जाता है या मौसम समाप्त होने पर फल स्वयं पानी में गिरकर कीचड़ में गहराई तक बैठ जाते हैं। इन बीजों से अप्रैल-मई में नए पौधे प्राकृतिक रूप से विकसित होने लगते हैं, जिन्हें आगे अन्य जलाशयों में प्रतिरोपित किया जा सकता है।

तालाबों में यदि पौधों की संख्या अधिक हो जाए, तो अवांछित तनों और पत्तियों की कटाई-छंटाई समय-समय पर करना आवश्यक होता है। ऐसा न करने पर उत्पादन की गुणवत्ता और पैदावार प्रभावित हो सकती है।

मत्स्य बीज दर

तालाब में सिंघाड़ा की सतह पर सघन फैलाव की स्थिति में मध्य और तलीय परत में रहने वाली कार्प मछलियां उपयोगी रहती हैं। एक हैक्टर जल क्षेत्र में केवल कार्प आधारित सिंघाड़ा उत्पादन के लिए लगभग 5000 अंगुलिकाओं का संचय किया जा

मत्स्यपालन का योगदान

देश की अर्थव्यवस्था में मत्स्य पालन व्यवसाय की महत्वपूर्ण भूमिका है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन में मत्स्य क्षेत्र का योगदान लगभग 0.9 प्रतिशत है, जबकि कृषि क्षेत्र का योगदान 4.7 प्रतिशत है। मत्स्य उत्पादन में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर है और अंत:स्थलीय जलकृषि में दूसरे स्थान पर है। वर्तमान में देश का कुल मत्स्य उत्पादन लगभग 10.79 मिलियन टन है, जिसमें 3.4 मिलियन टन उत्पादन अंत:स्थलीय जलीय संसाधनों से तथा 3.0 मिलियन टन समुद्री जल संसाधनों से प्राप्त होता है। देश में मछली की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक खपत 9.0 कि.ग्रा. है, जो विश्व के औसत 15.0 कि.ग्रा. से कम है। राष्ट्रीय विकास, पोषण सुरक्षा और रोजगार सृजन में मत्स्य पालन की भूमिका आने वाले वर्षों में और अधिक सशक्त रूप में उभरने वाली है।

मत्स्य किस्म

सिंघाड़ा तालाब की जल सतह पर पूरी तरह फैला रहता है, इसलिए ऐसी कार्प मछलियों का चयन किया जाता है, जो तालाब के मध्य और तलीय क्षेत्र में रहना तथा आहार ग्रहण करना पसंद करती हैं। इस प्रणाली में प्रमुख रूप से रोहू और मृगल का चयन उपयुक्त माना जाता है। रोहू मुख्यत: तालाब में उगने वाली काई और सतह के भीतर मौजूद पेरीफाइटॉन का सेवन करती है, जबकि मृगल तालाब की तली में उपलब्ध सड़े-गले जैविक पदार्थों और कीटों को आहार के रूप में ग्रहण करती है। इसके अतिरिक्त, विशेष रूप से छोटे और मौसमी तालाबों में वायुश्वासी मछलियों का पालन भी उपयोगी विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है। इनमें मांगुर, सिंधी, कवई जैसी मछलियां शामिल हैं, जो तालाब के तलीय क्षेत्र में रहना और आहार करना पसंद करती हैं तथा कम ऑक्सीजन वाले जल में जीवित रहने के लिए अनुकूलित होती हैं। इन वायुश्वासी मछलियों के शरीर में अतिरिक्त श्वसन अंग पाए जाते हैं, जिनकी सहायता से ये जल में घुलित ऑक्सीजन के अलावा प्रत्यक्ष रूप से वायुमंडलीय ऑक्सीजन का भी उपयोग कर सकती हैं। मौसमी तालाबों में जल स्तर घटने या तालाब सूखने की स्थिति में इन्हें आसानी से पकड़ा भी जा सकता है।

सकता है। इस मॉडल में सामान्यत: वायुश्वासी मछलियां अधिक उपयुक्त रहती है, क्योंकि ये तली में रहकर आहार ग्रहण करती है।

छोटे और मौसमी तालाबों में सिंघाड़ा के साथ वायुश्वासी मछलियों का संचय लाभकारी होता है। इन मछलियों का संचय लगभग 25,000 प्रति हैक्टर की दर से किया जा सकता है। इनके साथ कॉमन कार्प मछलियों का पालन भी संभव है। संचय के समय कॉमन कार्प के शिशुमीन की लंबाई 10 सें.मी. से अधिक रखना सुरक्षित होता है, अन्यथा वायुश्वासी प्रजातियां छोटी कार्प को हानि पहुंचाती हैं।

सिंघाड़े कटाई के बाद मत्स्य पालन अप्रैल-मई तक जारी रखने से मछलियां 8-10 महीने में ये बाजार आकार प्राप्त कर लेती हैं। संचय में एक समान और स्वस्थ अंगुलिकाओं का चयन करना अनिवार्य है। आकार में अधिक अंतर होने पर बड़ी मछलियां छोटी को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

आहार प्रबंधन

इन तालाबों में पहले से ही जैविक पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। वायुश्वासी मछलियों के पालन में अतिरिक्त जैविक या रासायनिक खाद देने की आवश्यकता नहीं होती। ये कम ऑक्सीजन और उपलब्ध प्राकृतिक पोषण में भी अच्छी वृद्धि करती हैं।

सिंघाड़ा के साथ कार्प मछलियों की समन्वित खेती में एक हैक्टर जल क्षेत्र के लिए लगभग 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फेट और 60 कि.ग्रा. पोटाश का उपयोग किया जा सकता है। उर्वरक की यह

ग्रामीण क्षेत्रों में आयवर्धक तकनीक

मात्रा दो किश्तों में दी जाती है: पहली किश्त प्रतिरोपण के 20 दिनों बाद और दूसरी किश्त पहली किश्त के 15 दिनों बाद। इससे तालाब में पोषक तत्व संतुलित रहते हैं और सिंघाड़ा तथा मछलियों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

सिंघाड़ा एवं मत्स्य की निकासी

सिंघाड़ा फलों की निकासी सितंबर-अक्टूबर में शुरू होती है और यह दिसंबर-जनवरी तक जारी रहती है। बेहतर गुणवत्ता और निरंतर उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए 8 से 10 दिनों के अंतराल पर फलों की निकासी करते रहना उपयुक्त माना जाता है। एक हैक्टर जल क्षेत्र में सिंघाड़े का सामान्य औसत उत्पादन 8 से 10 टन प्रति वर्ष तक प्राप्त होता है, जबकि अधिक उपजाऊ और पोषक कीचड़ वाली मृदा वाले तालाबों में यह 15 टन प्रति हैक्टर तक पहुंच सकता है।

सिंघाड़े के साथ समन्वित खेती में यदि वायुश्वासी मछलियां पाली जाएं, तो सामान्यत: औसत वार्षिक उत्पादन 1000 से 1200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्राप्त किया जा सकता है।

मछलियों की निकासी मई-जून तक कर लेना बेहतर होता है, क्योंकि 8 से 10 महीनों की पालन अवधि में ये बाजार में बिक्री योग्य आकार तक विकसित हो जाती हैं। कार्प मछलियों की निकासी जाल द्वारा आसानी से की जा सकती है। वायुश्वासी मछलियों की पूर्ण निकासी के लिए तालाब का पानी पूरी तरह निकालना आवश्यक होता है। जाल से छेड़छाड़ होने पर ये तालाब की कीचड़ परत में गहराई तक घुस जाती हैं और जल मौजूद रहने पर इन्हें पकड़ना कठिन हो जाता है।

समुचित समय पर निकासी, उपयुक्त आहार प्रबंधन और जल स्तर का सही नियंत्रण इस समन्वित तालाब प्रणाली को अधिक लाभकारी और प्रबंधन में सरल बनाते हैं। ■

सिंघाड़ा किस्में

उत्पादन के लिए साधारणत: दो सींग या कांटे वाली किस्म का उपयोग अधिक किया जाता है। सिंघाड़े की कई प्रजातियां पाई जाती हैं, लेकिन भारत में मुख्य रूप से चार किस्में अधिक प्रचलित हैं:

- कानपुर
- पटना
- देसी छोटा
- देसी बड़ा

इन किस्मों का नामकरण उनकी उत्पत्ति के स्थान और फल के आकार के आधार पर किया गया है। उपरोक्त में से कानपुर और पटना प्रजाति के फल स्वाद की दृष्टि से श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनका गूदा मुलायम, मीठा और अधिक स्वादिष्ट होता है, जिस कारण इनकी बाजार में मांग भी अपेक्षाकृत अधिक रहती है। सिंघाड़े की उपयुक्त किस्म का चयन किसानों को बेहतर उत्पादन और अधिक बिक्री मूल्य प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

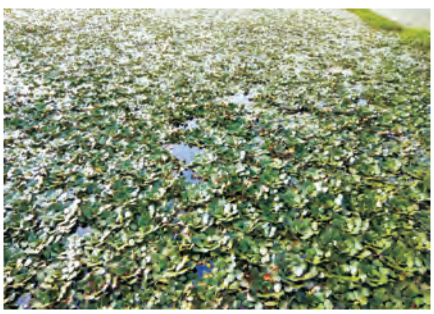

दोहरे लाभ से भरपूर प्रणाली

धान परती भूमि में मेड़ों पर अरहर उत्पादन

राकेश कुमार[1], रघुबर साहू[2], देवेन्द्र मंडल[2], संजीव कुमार और प्रेम कुमार सुंदरम[1]

"अरहर एक महत्वपूर्ण नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली फसल है, जो मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि करती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली मृदा की निचली परतों से पोषक तत्वों और नमी को ऊपर लाने में सहायक होती है। इस फसल में प्रोटीन की मात्रा लगभग 20-21 प्रतिशत तक होती है, जिसके कारण यह विश्वभर में प्रोटीन का एक प्रमुख आहार स्रोत मानी जाती है। अरहर लगभग 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने में सक्षम है। इसका अगली फसल की उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पारम्परिक कृषि प्रणालियों में इसे 'जैविक हल' और वर्षा आधारित क्षेत्रों में 'कल्पवृक्ष' भी कहा जाता है। धान-परती प्रणाली में इसका उपयोग सर्वोत्तम अभ्यास माना जाता है। इसके सभी भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त, दाने आहार के रूप में, जबकि सूखी शाखाएं ईंधन, छप्पर बनाने तथा टोकरियां तैयार करने में काम आती हैं। धान-परती भूमि में मेड़ों पर अरहर उत्पादन किसानों के लिए कम लागत में अतिरिक्त आय प्राप्त करने का एक प्रभावी विकल्प है। मेड़ों पर अरहर लगाने से मुख्य खेत की नमी संरक्षित रहती है और परती अवधि का बेहतर उपयोग संभव हो पाता है। इसके साथ ही, यह पद्धति मृदा संरक्षण, पोषक तत्व प्रबंधन और स्थायी कृषि के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है।"

अरहर को वर्षा आधारित परिस्थितियों में सामान्यत: अधिक दूरी पर बोया जाता है। इसकी शुरुआती वृद्धि अपेक्षाकृत धीमी होती है। यह फसल न केवल स्वयं वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिर करती है, बल्कि अंतर-फसल के रूप में बोए जाने पर बाजरा एवं अन्य अनाजों की नाइट्रोजन आवश्यकता को भी पूरा करती है। अन्य दलहनों की तुलना में अरहर प्रति इकाई पादप जैवभार में अधिक नाइट्रोजन अवशोषित करती है। मृदा में स्थिर फॉस्फोरस को भी गतिशील बनाने में सहायक होती है।

वर्तमान में अरहर लगभग 16.31 लाख हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती है। इससे कुल 12.37 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है तथा

[1]भाकृअनुप-पूर्वी क्षेत्र के लिए अनुसंधान परिसर, पटना, बिहार-800014; [2]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210

इसकी औसत उत्पादकता 759 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है।

भारत, विश्व में विभिन्न प्रकार की दालों का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है। चना, अरहर, मूंग, मसूर जैसी उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय दालें देश में प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं। ये दालें प्रोटीन, फाइबर तथा विटामिन के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता वाले कार्बोहाइड्रेट और खनिज उपलब्ध करवाती हैं। सामान्यत: दालों को सबसे टिकाऊ फसलों में से एक माना जाता है। एक कि.ग्रा. दाल उत्पादन के लिए मात्र 359 लीटर पानी की आवश्यकता होती है, जबकि सोयाबीन के लिए 1,802 लीटर और मूंगफली के लिए लगभग 3,071 लीटर पानी की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा, दलहनी फसलें मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा की गुणवत्ता सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दालें प्रोटीन और ऊर्जा का एक समृद्ध स्रोत होते हुए भी मुख्यत: सीमांत और उप-सीमांत भूमि पर तथा ऊर्जा की कमी वाली परिस्थितियों में उगाई जाती हैं, जिसके कारण उत्पादन क्षमता अक्सर पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो पाती।

धान-परती भूमि कृषि प्रणाली के लिए मुख्य रूप से धान-चना/मसूर फसल प्रणाली तथा धान-कुसुम फसल प्रणाली को अपनाया जाता है। इन प्रणालियों से मृदा की उर्वराशक्ति बनी रहती है। भूमि की नमी संरक्षित रहती है और किसानों की आय में निरंतर वृद्धि होती है।

मेड़ पर अरहर की स्वस्थ उपज

जहां जलवायु परिवर्तन और वर्षा की अनिश्चितता फसल उत्पादन को प्रभावित करती है, वहां अरहर की खेती के लिए मेड़ विधि एक वैज्ञानिक, कम लागत वाली और अत्यंत उपयुक्त तकनीक मानी जाती है। यह विधि खेत में जलभराव को रोकने, नमी संरक्षण, मृदा गुणवत्ता सुधार और उपज वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यदि किसान समय पर बुआई, बीज उपचार, पौधों के बीच उचित दूरी, आवश्यक सिंचाई तथा कीट एवं रोग नियंत्रण जैसे वैज्ञानिक प्रबंधन उपायों को अपनाएं, तो वे न केवल अरहर की उपज बढ़ा सकते हैं, बल्कि धान-परती प्रणाली में अपनी कुल आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं।

मेड़ पर अरहर की खेती से लाभ

बेहतर जल निकासी

अरहर की खेती मेड़ों पर विशेष रूप से उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है, जहां सतही जल निकासी कमजोर होती है। मेड़ (उठी हुई क्यारियां) जलभराव को रोकती हैं और जड़ क्षेत्र में बेहतर वायु संचार सुनिश्चित करती हैं, जिससे पौधों का विकास अधिक स्वस्थ होता है। बिहार, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में धान-परती क्षेत्रों में मेड़ पर अरहर की खेती तेजी से प्रचलित हो रही है। मेड़ के ऊंचे स्तर पर बोई गई अरहर अतिरिक्त जल प्रबंधन में सहायक होती है। पानी आसानी से नीचे की ओर बह जाता है और जड़ें सड़ने की समस्या से बची रहती हैं।

उन्नत वातन

समतल बुआई की तुलना में मेड़ों पर बोए गए पौधों को जड़ों तक अधिक वायु संचार मिलता है। यह राइजोबियम जीवाणुओं द्वारा गांठों के निर्माण (नाइट्रोजन स्थिरीकरण) को प्रोत्साहित करता है। बेहतर नोड्यूलेशन के कारण पौधे अधिक स्वस्थ, अधिक सशक्त और उपज में संभावित रूप से अधिक होते हैं। राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के उपयोग योग्य रूप में बदलते हैं, इसलिए मेड़ों पर बेहतर वातन इस प्रक्रिया को मुख्य रूप से बढ़ाता है।

वायुरोधक एवं कीट नियंत्रण

मेड़ों पर अरहर उगाना किसानों के लिए कम लागत में अतिरिक्त आय प्राप्त करने का सरल उपाय है। मेड़ें हवा की दिशा में अवरोध बनाकर फसल को तेज हवाओं से होने वाले नुकसान से बचाती हैं। अरहर स्वयं नाइट्रोजन-स्थिरीकरण क्षमता के कारण मृदा की उर्वरता सुधारती है, जिससे आगामी फसलों को भी लाभ मिलता है। परती पड़ी मेड़ों का उपयोग कर किसान बिना अतिरिक्त निवेश के अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं, जिससे छोटे एवं सीमांत किसानों की आजीविका मजबूत होती है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

अरहर की फसल में कीटों और रोगों का समय पर नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। इनसे उपज में उल्लेखनीय हानि हो सकती है। प्रमुख कीटों में फलीछेदक आमतौर पर अधिक नुकसान पहुंचाता है। इसके नियंत्रण के लिए नीम आधारित जैविक कीटनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है या आवश्यकता होने पर इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी की 200 ग्राम प्रति हैक्टर मात्रा का छिड़काव प्रभावी रहता है। प्रमुख रोगों में विल्ट, लघु पत्ती रोग और पत्ती झुलसा शामिल हैं इनसे बचाव के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन, बुआई से पूर्व बीज उपचार और खेत में सफाई जैसे उपाय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इससे पौधों को प्रारंभिक अवस्था से ही सुरक्षा मिलती है और फसल स्वस्थ रहती है।

सारणी: मेड़ तकनीक द्वारा अरहर उगाने का तुलनात्मक आर्थिक विश्लेषण

क्र. सं.	तकनीकी विवरण	बीज उपज कि.ग्रा./हैक्टर	आर्थिक मूल्यांकन (रुपये/हैक्टर)		
			खेती की लागत	सकल लाभ	शुद्ध लाभ
1.	मेड़ तकनीक	2162	29600	151340	121740
2.	पारंपरिक पद्धति	1546	26100	108220	82120

आहार विविधीकरण

अरहर प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, आहार फाइबर तथा विटामिन-खनिजों का उत्कृष्ट स्रोत है। इसमें थायमिन, एस्कॉर्बिक एसिड, राइबोफ्लेविन, नियासिन और फोलिक एसिड जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। यह कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, जिंक और पोटेशियम जैसे खनिज भी प्रदान करती है। साबुत दाल या हरे दानों के रूप में नियमित आहार में अरहर शामिल करने से पोषण संबंधी कमियां दूर होती हैं। रक्त शर्करा नियंत्रण और पाचन सुधार में सहायता मिलती है, जो विशेष रूप से शाकाहारियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जलभराव में कमी

मेड़ें प्राकृतिक अवरोध की तरह कार्य करती हैं, जो अतिरिक्त पानी को फसल से दूर मोड़कर खेत से बाहर निकालने में सहायक होती हैं। इससे पौधों के आसपास जल जमाव की समस्या नहीं होती और मृदा में उचित नमी स्तर बना रहता है। विशेष रूप से अरहर जैसी लम्बी अवधि वाली फसल के लिए जलभराव गंभीर समस्या बन सकती है, जिसे मेड़ प्रणाली प्रभावी रूप से नियंत्रित करती है।

बीज उपचार

अरहर की फसल में प्रारम्भिक वृद्धि को मजबूत करने और बीज एवं मृदाजनित रोगों की रोकथाम के लिए बुआई से पहले बीज उपचार अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहले बीजों को कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित किया जाता है, ताकि कवकजनित रोगों का प्रभाव कम हो और अंकुरण बेहतर हो सके। रासायनिक उपचार के बाद बीजों पर जैव उर्वरक लगाएं इसमें राइजोबियम कल्चर 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज तथा फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु 20 ग्राम/कि.ग्रा. बीज का उपयोग किया जाता है। राइजोबियम पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ाता है, जबकि फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु मृदा में उपलब्ध फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर जड़ विकास और पोषण को सुदृढ़ करता है। इस संपूर्ण बीज उपचार प्रक्रिया से पौधे अधिक स्वस्थ, सशक्त तथा उच्च उत्पादन देने में सक्षम बनते हैं।

अरहर उत्पादन

बीज चयन

उच्च गुणवत्ता और अधिक उपज के लिए क्षेत्रानुसार उपयुक्त किस्मों का चयन आवश्यक है। बिहार के लिए अनुशंसित प्रमुख किस्में शरद बहार, पूसा 992, पूसा 2001, बहार, एमएल-5, आशा, यूपीएएस-120, आईपीए-203 और नरेंद्र अरहर-1 हैं।

बीज दर

अरहर की खेती के लिए 12-15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज दर उपयुक्त मानी जाती है। बुआई की दूरी और विधि के अनुसार इसमें हल्का परिवर्तन किया जा सकता है।

बुआई का समय और विधि

अरहर की बुआई का सबसे अच्छा समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक है।

बुआई विधि

अरहर की मेड़ पर खेती करते समय बीजों को मेड़ की ढलान पर या मेड़ के ऊपरी भाग में बोना उपयुक्त रहता है। इससे जलभराव से बचाव होता है और पौधों को बेहतर वायु संचार मिलता है। बीजों को 4-6 सें.मी. गहराई पर बोएं, ताकि अंकुरण सुचारु रूप से हो सके। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60-75 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20-25 सें.मी. रखने से पौधों को पर्याप्त स्थान मिलता है और उनकी वृद्धि समान रूप से होती है।

खाद और उर्वरक प्रबंधन

अरहर की संतुलित वृद्धि और उच्च उत्पादन के लिए पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन आवश्यक है। प्रति हैक्टर नाइट्रोजन 20-25 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 40-50 कि.ग्रा. तथा पोटाश 20 कि.ग्रा. की अनुशंसा की जाती है। इन रासायनिक उर्वरकों को बुआई से पहले या बुआई के समय गोबर की सड़ी खाद के साथ मृदा में अच्छी तरह मिलाकर मूल मात्रा के रूप में देना चाहिए। जैविक पदार्थ और उर्वरकों का यह संयुक्त उपयोग मृदा की संरचना सुधारता है, पोषक उपलब्धता बढ़ाता है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि को सुदृढ़ करता है।

सिंचाई प्रबंधन

अरहर मुख्यतः वर्षा आधारित फसल है, लेकिन फूल आने और दाना भरने की अवस्था में हल्की सिंचाई उपज बढ़ाने में सहायक होती है। सूखे की स्थिति में पौधों की वृद्धि और दाना विकास प्रभावित न हो, इसके लिए एक से दो बार सिंचाई की आवश्यकता हो सकती है। यदि सिंचाई नालियों के माध्यम से की जाए, तो पानी सीधे जड़ों तक पहुंचता है, जिससे नमी का बेहतर उपयोग होता है और पानी की अनावश्यक बर्बादी नहीं होती।

मेड़ पर बुआई की तकनीक में सर्वाधिक बीज उपज 2162 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दर्ज की गई, जबकि पारंपरिक पद्धति में यह मात्र 1546 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रही। इसका प्रमुख कारण यह था कि मेड़ विधि में बीज अंकुरण बेहतर हुआ और मेड़ों के आसपास के क्षेत्र को पर्याप्त नमी और पोषक तत्व प्राप्त हुए, जिससे पौधों की वृद्धि में स्पष्ट सुधार दिखा।

आर्थिक विश्लेषण से पता चलता है कि यह तकनीक पारंपरिक पद्धति के मुकाबले लगभग 121740 रुपये अधिक शुद्ध लाभ प्रदान करती है, जबकि पारंपरिक प्रणाली में यह लाभ लगभग 82120 रुपये प्रति हैक्टर के आसपास रहा।

उपज और लाभ के आधार पर मूल्यांकन से स्पष्ट होता है कि अरहर की मेड़ और नालियों वाली बुआई विधि जल प्रबंधन को बेहतर बनाती है। पौधों की वृद्धि को अनुकूल बनाकर उपज में लगभग 20 से 30 प्रतिशत तक वृद्धि संभव करती है। अच्छे कृषि प्रबंधन और उन्नत किस्मों के साथ इस तकनीक को अपनाने पर किसान प्रति हैक्टर 15 से 20 क्विंटल तक उपज प्राप्त कर सकते हैं, जो पारंपरिक विधियों की तुलना में अधिक लाभकारी सिद्ध होती है। ■

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ अपना ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें। संपादक

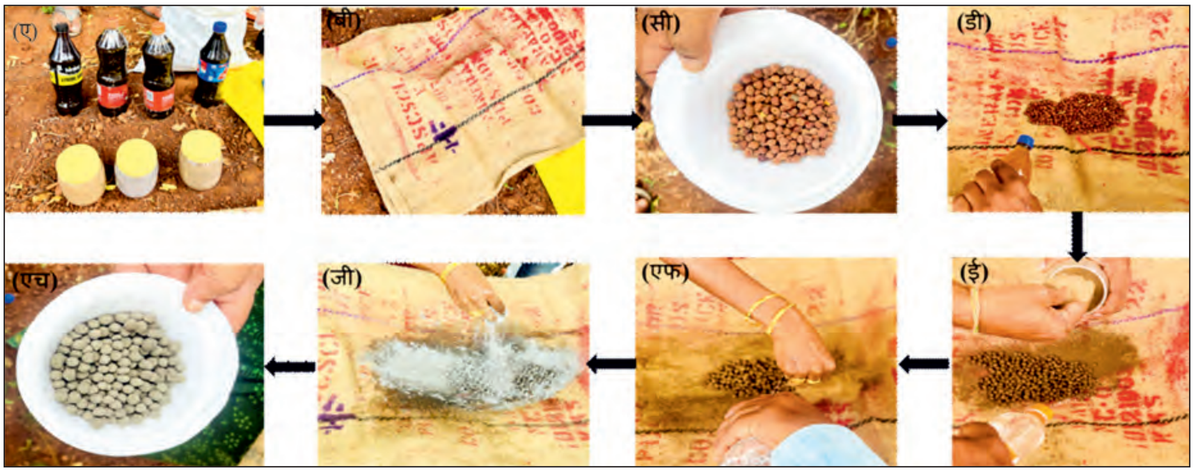

अंकुरण सुधार हेतु बीज गोलीकरण तकनीक

महिपाल चौधरी[1], अनुषा एम.एन.[1], बी. कृष्णा राव[1], रवि के.एन.[1] और एम. मधु[2]

"शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बीज गोलीकरण एक प्रभावी, सस्ती और टिकाऊ तकनीक है। यह बीजों की अंकुरण दर, पौधों की प्रारंभिक वृद्धि और फसल के जीवित रहने की क्षमता को बढ़ाने में मदद करती है। यह तकनीक बीज को नमी, पोषक तत्वों और कीटों से सुरक्षा प्रदान करती है, जिससे संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव हो पाता है और जैविक खेती को बढ़ावा मिलता है। जलवायु परिवर्तन और अनियमित वर्षा की स्थितियों में बीज गोलीकरण किसानों को अधिक लचीली, उत्पादक और स्थायी कृषि प्रणाली अपनाने में सहायक सिद्ध होता है।"

शुष्क क्षेत्रों में जहां वर्षा पहले से ही अल्प होती है, वहीं जलवायु परिवर्तन ने इसकी अनियमितता और अप्रत्याशितता को और बढ़ा दिया है। कभी लंबे समय तक बहुत कम वर्षा होती है, तो कभी कम समय में तेज तूफानी वर्षा हो जाती है। इस अस्थिर मौसम ने किसानों के लिए बुआई की योजना बनाना चुनौतीपूर्ण बना दिया है, क्योंकि वे नियमित वर्षा पर निर्भर नहीं रह सकते।

इसके परिणामस्वरूप बीज विभिन्न जैविक और अजैविक तनावों के संपर्क में आते हैं, जिससे इनकी अंकुरण क्षमता और प्रारंभिक वृद्धि प्रभावित होती है। टिकाऊ कृषि के लिए जैविक रूप से स्वीकृत उपचारों के प्रति रुचि बढ़ने के बावजूद, असंगत वर्षा के कारण बीजों को आवश्यक नमी समय पर उपलब्ध नहीं हो पाती और वे सूख जाते हैं, बह जाते हैं या अंकुरित नहीं हो पाते।

यह समस्या केवल फसली क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि वनस्पति पुनर्स्थापन और भूमि बहाली के प्रयासों में भी गंभीर बाधाएं उत्पन्न करती है, जहां बीजों को कठोर मृदा, पोषक तत्वों की कमी और कीटों के दबाव का सामना करना पड़ता है। पारंपरिक बुआई विधियां इन परिस्थितियों में अक्सर असफल रहती हैं, और जैसे-जैसे शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का विस्तार हो रहा है, कम पानी में भी पौधों को सफलतापूर्वक स्थापित करने वाली नई तकनीकों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

इन चुनौतियों के समाधान में बीज आवरण और गोलीकरण तकनीकें अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई हैं। ये तकनीकें दलहन, अनाजों, तिलहनों, सब्जियों तथा विभिन्न जंगली पौधों सहित अनेक फसलों पर अपनाई जा सकती हैं। विशेषकर बीज गोलीकरण तकनीक, जिसमें बीजों को मृदा, पोषक तत्वों और जैविक पदार्थों की परत से ढका जाता है-शुष्क क्षेत्रों में अत्यधिक उपयोगी साबित हुई है। यह तकनीक बीजों को कीटों, पक्षियों और सूखने से बचाने के साथ-साथ नमी के समान रूप से अवशोषण और संरक्षण को भी सुनिश्चित करती है। गोलीकरण बीजों को संभालना एवं सटीकता के साथ बोना आसान होता है।

इससे पतला करने की आवश्यकता कम होती है और उचित बीज अंतर सुनिश्चित होता है।

आवश्यक सामग्री

- बीज
- जूट की बोरी
- बीजामृत
- बारीक मृदा का पाउडर
- घनजीवामृत पाउडर
- राख पाउडर

बीज गोलीकरण की विधि

- बीज गोलीकरण में बीजों को चिपकने वाली सामग्री, मृदा, जैविक खाद व लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कई पतली परतों से लेपित किया जाता है, जिससे बीज समान आकार के, टिकाऊ और सुरक्षित बन जाते हैं।
- जिन बीजों का गोलीकरण करना है, उन्हें जूट या कपड़े की बोरी में रखें। इसके बाद बोरी को हल्के-हल्के हिलाते हुए बीजामृत का छिड़काव किया जाता है। यह उपचार बीजजनित व मृदाजनित रोगों से सुरक्षा देता है तथा अंकुरण क्षमता को बढ़ाता है।
- बीजामृत लेपित बीजों में बारीक मृदा का पाउडर मिलाया जाता है और बोरी को लगातार घुमाया जाता है, ताकि मृदा की एक समान परत बन जाए। यह परत बीज को तापमान, नमी उतार-चढ़ाव

[1]भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, बल्लारी-583104; [2]भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून-248195

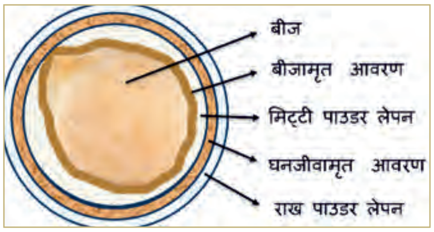

चने के बीज का गोलीकरण

व कीटों से बचाती है।

- इसके बाद घन जीवामृत पाउडर का छिड़काव किया जाता है। इसमें नाइट्रोजन फिक्सर, फॉस्फेट घोलक फफूंद तथा लाभकारी बैक्टीरिया होते हैं। ये अंकुरण के बाद जड़ों के आसपास जल्दी सक्रिय होकर पौधे को शुरुआती पोषण उपलब्ध करवाते हैं।

लाभ

- **अंकुर शक्ति में वृद्धि:** गोलीकृत बीज अधिक मजबूत और स्वस्थ पौधे विकसित करते हैं, जिनमें पर्यावरणीय तनाव को सहने की बेहतर क्षमता होती है।
- **कुशल बीज उपयोग:** अतिरिक्त बीज दर की आवश्यकता घटती है, जिससे बीज की बचत और समग्र लागत में कमी आती है।
- **पर्यावरण के अनुकूल और लागत प्रभावी:** स्थानीय रूप से उपलब्ध मृदा, राख, जैविक घोल और जैविक आदान का उपयोग इसे छोटे किसानों के लिए अत्यंत किफायती विकल्प बनाता है।
- **टिकाऊ कृषि को बढ़ावा:** जैविक सामग्रियों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे मृदा के स्वास्थ्य में सुधार होता है।
- **जलवायु अनुकूल:** यह तकनीक अनियमित वर्षा, उच्च तापमान और शुष्क परिस्थितियों में बेहतर फसल स्थापना में सहायक होती है।
- **सटीक बुआई की सुविधा:** समान आकार और गोलाकार रूप मिलने से बीजों को बोना आसान होता है। इससे बुआई की दक्षता बढ़ती है और फसल पंक्तियां समान रूप से विकसित होती हैं।

पर्यावरण अनुकूल

शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि के लिए कम लागत वाले गोलीकृत बीज एक व्यावहारिक, पर्यावरण अनुकूल और विस्तार योग्य समाधान प्रदान करते हैं। इन गोलीकृत बीजों में खनिज आधारित उर्वरक, जैविक बंधक और जल-अवशोषक सामग्री शामिल होती है, जो संसाधनों की बचत करते हुए पौधों की प्रारंभिक वृद्धि को प्रोत्साहित करती है। यह तकनीक बीज स्थापना में सुधार लाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और सूखा प्रभावित क्षेत्रों में अनुकूल और टिकाऊ कृषि प्रणालियां विकसित करने में मदद करती है। प्राकृतिक तथा जैविक खेती प्रणालियों में, गोलीकृत बीज विशेष रूप से मानसून पूर्व शुष्क बुआई के लिए उपयोग किए जाते हैं, जिससे मानसून के आगमन पर तीव्र और समान अंकुरण सुनिश्चित होता है। कम और अनियमित वर्षा, पोषक तत्वों की कमी वाली मृदा तथा तेजी से नमी ह्रास की स्थितियों में बीज गोलीकरण न केवल अंकुर स्थापना और फसल जीवित रहने की दर बढ़ाता है, बल्कि इनपुट लागत और बाहरी रसायनों पर निर्भरता को भी घटाता है। जलवायु परिवर्तन के परिदृश्यों के कारण शुष्क क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन अपेक्षित हैं। वर्षा के पूर्वानुमानों में परिवर्तनीयता और अनिश्चितता बहुत अधिक है। ऐसे में बीज गोलीकरण जैसी सरल, सस्ती और प्रभावी तकनीकें किसानों को बदलते मौसम के अनुरूप अधिक स्थायी, अनुकूल और उत्पादक कृषि प्रणाली अपनाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

- अतिरिक्त नमी हटाने और बीज की सतह को सख्त करने के लिए राख पाउडर प्रयोग किया जाता है। इसमें पोटेशियम, कैल्शियम एवं सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं, जो प्रारंभिक वृद्धि में सहायक हैं।
- गोलीकरण किए गए बीज 8-12 प्रतिशत नमी बनाए रखते हैं। इससे ये मानसून आने तक सुरक्षित रहते हैं और पर्याप्त नमी मिलने पर शीघ्र अंकुरित होते हैं।
- इस तकनीक से बीज 6 महीने तक सूखे, पक्षियों और कीटों से सुरक्षित रहते हैं। इससे इनकी अंकुरण और जीवित रहने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

शुष्क क्षेत्रों में बीज गोलीकरण का महत्व

शुष्क क्षेत्रों में अनियमित वर्षा, उच्च वाष्पण, कम मृदा उर्वरता और बार-बार होने वाली फसल विफलताएं सामान्य समस्या हैं। ऐसे संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्रों में बीज गोलीकरण किसानों के लिए कई महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करता है:

- **नमी संरक्षण:** मृदा तथा जैविक सामग्री का लेपन बीज के आसपास नमी बनाए रखता है, जिससे बीज के सूखने की आशंका कम होती है।
- **बेहतर अंकुरण:** सुरक्षात्मक आवरण बीजों को तापमान के उतार-चढ़ाव और कठोर मृदा सतह से बचाकर समान और तेज अंकुरण को बढ़ावा देता है।
- **पोषक तत्व संवर्धन:** घनजीवामृत व अन्य जैविक परतें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, जिंक तथा सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध करवाकर प्रारंभिक जड़ एवं अंकुर वृद्धि को मजबूत बनाती हैं।
- **बीज उपयोग दक्षता:** गोलीकृत बीज हवा, जल कटाव, पक्षियों व कीटों से होने वाले नुकसान को कम करते हैं, जिससे कम बीज में बेहतर फसल स्थापना संभव होती है।

शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में, विशेषकर जलवायु परिवर्तन एवं अनियमित वर्षा की बढ़ती चुनौतियों के बीच, बीज गोलीकरण एक कम लागत, व्यावहारिक और टिकाऊ तकनीक है। यह तकनीक बीजों को नमी संरक्षण, सुरक्षा और आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कर कठोर परिस्थितियों में भी बेहतर अंकुरण और फसल स्थापना सुनिश्चित करती है।

स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक सामग्रियों के उपयोग के कारण यह तकनीक सस्ती, पर्यावरण अनुकूल और छोटे किसानों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। कुल मिलाकर, बीज गोलीकरण न केवल अनुकूल कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देता है, बल्कि शुष्क क्षेत्रों में खाद्य और आजीविका सुरक्षा को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ■

कपास में टिंडा सड़न रोग

लिकोन कुमार आचार्य, मुकेश कुमार खोखर, अनूप कुमार और **अजंता बिराह**

"कपास (*गॉसिपियम* प्रजाति, कुल: मालवेसी) विश्व की सबसे व्यापक रूप से उगाई जाने वाली और आर्थिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण फसलों में से एक है। यह न केवल सबसे अधिक व्यावसायिक मूल्य वाले प्राकृतिक वस्त्र रेशों का प्रमुख स्रोत है, बल्कि पशु आहार में प्रयुक्त प्रोटीन और तेल का भी महत्वपूर्ण साधन है। भारत, विश्व स्तर पर कपास उत्पादन में अग्रणी है और वैश्विक कुल क्षेत्रफल में लगभग 40 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन में 21 प्रतिशत का योगदान देता है। छह माह या उससे अधिक समय तक खेत में खड़ी रहने वाली कपास की फसल 60 से अधिक रोगों के प्रति संवेदनशील रहती है, जिसके कारण पैदावार में कमी तथा उत्पादन लागत में वृद्धि हो सकती है। बीटी-कपास के व्यावसायीकरण तथा बदलती जलवायु परिस्थितियों के कारण कपास रोगों की प्रकृति और उनकी तीव्रता में काफी परिवर्तन देखने को मिला है। हाल के वर्षों में टिंडा सड़न रोग ने अपने व्यापक प्रकोप और संभावित उपज एवं गुणवत्ता हानि के कारण विशेष ध्यान आकर्षित किया है। कपास के टिंडों (डोडों) का सूक्ष्मजीवीय क्षय या सड़न, जो विभिन्न वनस्पति रोगजनक फफूंद, जीवाणुओं तथा मृतजीवियों द्वारा उत्पन्न होता है, को ही टिंडा सड़न कहा जाता है। इस रोग का प्रभावी नियंत्रण समेकित नाशीजीव प्रबंधन रणनीतियों के माध्यम से संभव है, जिनकी जानकारी इस लेख में विस्तार से प्रस्तुत की गई है।"

भाकृअनुप-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली-110068

कपास विश्व की प्रमुख व्यावसायिक फसलों में से एक है। हाल के वर्षों में कपास में टिंडा सड़न रोग एक उभरती हुई गंभीर समस्या के रूप में सामने आया है। स्थान एवं महामारी विज्ञान के आधार पर अब तक इससे जुड़े 100 से अधिक रोगजनकों की पहचान की जा चुकी है, इसलिए इसे 'टिंडा सड़न समुच्चय' भी कहा जाता है। अधिकांश रोगजनक घावजनित होते हैं, जो कीट प्रहार, यांत्रिक क्षति या अपरिपक्व टिंडों के फटने पर संक्रमण करके सड़न उत्पन्न करते हैं, जबकि कुछ रोगजनक द्वितीयक संदूषक के रूप में भूमिका निभाते हैं।

लक्षण एवं कारक जीव

लक्षणों की प्रकृति और संलग्न रोगजनकों के आधार पर, टिंडा सड़न समुच्चय को मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है:

- बाह्य टिंडा सड़न
- आंतरिक टिंडा सड़न

आंतरिक टिंडा सड़न (जीवाणुजनित बीज टिंडा सड़न)

यह रोग फूल आने से लेकर बॉल बनने की अवस्था के दौरान दिखाई देता है। टिंडों का सड़ना कपास के पौधे में किसी भी स्थान से शुरू हो सकता है, विशेष रूप से पौधे के निचले भाग में होता है।

- यांत्रिक चोट या चूसने एवं छेदने वाले कीटों द्वारा किए गए घाव के स्थान से जीवाणु बॉल के अंदर प्रवेश करता है।
- लोक्यूल (बीज कक्ष) के अंदर बीज, रेशे सड़ जाते हैं और हल्के पीले से गुलाबी-लाल रंग के हो जाते हैं, जबकि बाहरी रूप से टिंडे हरे दिखाई देते हैं।
- अपरिपक्व संक्रमित लोक्यूल को 'हार्ड लॉक' के रूप में जाना जाता है।
- लोक्यूल के अंदर सड़ी हुई गंध के साथ चिपचिपाहट पाई जाती है।

आंतरिक टिंडा सड़न

- संक्रमित टिंडे खुल भी सकते हैं या बंद रह सकते हैं।

संलग्न जीवाणु रोगजनक

पैंटोया एग्लोमेरन्स, पैंटोया डिस्पर्सा, एरविनिया यूरेडोवोरा, जैंथोमोनास सिट्री पीवी. मालवेसेरम, बैसिलस पुमिलस तथा अन्य जीवाणु प्रजातियां इस रोग में संलग्न पाई गई हैं।

बाह्य टिंडा सड़न (कवकीय टिंडा सड़न)

ये लक्षण टिंडों की परिपक्वता और फटने की अवस्था के दौरान दिखाई देते हैं और आमतौर पर पौधे के निचले से मध्य भाग के टिंडों पर होते हैं।

- ब्रैक्ट्स (संरक्षक पत्तियों) के किनारों पर छोटे भूरे या काले, पानी से भीगे हुए धब्बे बनते हैं, जो बाद में बढ़कर पूरी बॉल को ढक लेते हैं।
- संक्रमित टिंडे सफेद, भूरे, साल्मन रंग या हल्के गुलाबी रंग की कवकीय वृद्धि से ढके होते हैं।
- संक्रमण अंदरुनी ऊतकों तक फैलकर बीजों को सड़ा देता है। लिंट का रंग पीला, भूरा या काला हो जाता है, जिससे बीज-कपास की गुणवत्ता कम हो जाती है।
- संक्रमित टिंडे सामान्यत: नहीं फटते और समय से पहले गिर जाते हैं।
- **संलग्न कवक:** फ्यूजेरियम मोनिलिफॉर्मे, एफ. इनकार्नाटम-इक्वीसेटीपरिसंकुल, कोलेटोट्रिकम गॉसिपीआई, लैसियोडिप्लोडिया थियोब्रोमाए, एस्परजिलस फ्लेवस, राइजोपस निग्रिकन्स, नेमाटोस्पोरा नागपुरी, बॉट्रीडिप्लोडिया प्रजाति, अल्टरनेरिया मैक्रोस्पोरा, फोमा एक्सीगुआ, म्यूकोर प्रजाति आदि।

बाह्य लक्षण प्रकट होने पर रोग नियंत्रण हेतु उपयुक्त कवकनाशकों का छिड़काव किया जाना चाहिए। इसके लिए कार्बेण्डाजिम 12 प्रतिशत+मैंकोजेब 63 प्रतिशत डब्ल्यूपी को 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जा सकता है।

वैकल्पिक रूप से कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यूपी/0.4 ग्राम प्रति लीटर, प्रोपिनेब 70 डब्ल्यूपी/2.5 ग्राम प्रति लीटर तथा प्रोपिकोनाजोल 25 ईसी/1 ग्राम प्रति लीटर की मात्रा भी प्रभावी पाई गई है।

रोग से ग्रस्त कपास टिंडा

इसके अतिरिक्त मेटिराम 55 प्रतिशत+पायराक्लोस्ट्रोबिन 5 प्रतिशत डब्ल्यूजी/2 ग्राम प्रति लीटर, एजॉक्सीस्ट्रोबिन 18.2 प्रतिशत+डाइफेनोकॉनाजोल 11.4 प्रतिशत एससी/1 मि.ली. प्रति लीटर और पायराक्लोस्ट्रोबिन 20 प्रतिशत एससी/1 ग्राम प्रति लीटर का उपयोग भी किया जा सकता है। फ्लक्सापाइरॉक्साड 167 ग्राम/लीटर+पायराक्लोस्ट्रोबिन 333 ग्राम/लीटर एससी को 0.6 मि.ली. प्रति लीटर पानी में तथा मेटिराम 55 प्रतिशत+पायराक्लोस्ट्रोबिन 5 प्रतिशत डब्ल्यूजी को 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से भी रोग नियंत्रण में अच्छे परिणाम मिलते हैं।

सड़े हुए टिंडे पर माइसेलियम वृद्धि

समेकित रोग प्रबंधन

टिंडा सड़न के प्रभावी प्रबंधन के लिए समेकित रोग प्रबंधन सबसे उपयुक्त विधि है। किसानों को अपनी फसल की नियमित निगरानी करनी चाहिए और निम्न उपायों को अपनाना चाहिए, ताकि रोग से बचाव किया जा सके तथा अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

- खेत में जल भराव न होने दें तथा जल निकासी सुनिश्चित करने के लिए नालियों और खाइयों का निर्माण करें।
- नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग न करें तथा संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाएं।
- पौधों की उचित दूरी बनाए रखें।
- संक्रमित टिंडों को खेत से हटा दें।
- फूल आने और बॉल बनने की अवस्था में रस चूसने एवं छेदने वाले कीटों की निगरानी करें। आवश्यकतानुसार फ्लोनिकामिड 50 डब्ल्यूजी/200 ग्राम/हैक्टर, डायफेनथियूरॉन 50 डब्ल्यूपी/600 ग्राम/हैक्टर, डिनोटेफ्यूरॉन 20 एसजी/150 ग्राम/हैक्टर सुरक्षित कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- आंतरिक टिंडा सड़न के प्रबंधन हेतु, रोग की गंभीरता आंकने के लिए 20 टिंडों का यादृच्छिक नमूना परीक्षण करें। आवश्यकतानुसार कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। रोग की तीव्रता के अनुसार 7-15 दिनों के अंतराल पर दोबारा छिड़काव किया जा सकता है।

किसानों के लिए आधुनिक कृषि विपणन मंच

देवेन्द्र कुमार वर्मा

> कृषि विपणन को मोटे तौर पर पारंपरिक और आधुनिक कृषि विपणन में वर्गीकृत किया जा सकता है। पारंपरिक विपणन में किसान अपनी उपज सीधे थोक विक्रेताओं या बिचौलियों को बेचते हैं, जो फिर उत्पादों को मूल्य श्रृंखला में आगे बेचते हैं। बिचौलिए अक्सर किसानों से कम मूल्य पर उपज खरीदते हैं और उसे उच्च मूल्य पर बाजार में बेचते हैं। आधुनिक विपणन में उन्नत विपणन विधियां और प्रौद्योगिकियां शामिल हैं, जो किसानों को अपने उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद करती हैं और उन्हें सीधे बाजार तक पहुंच प्रदान करती हैं। आधुनिक विपणन में ई-नाम, सुपरमार्केट और अनुबंध खेती जैसी विधियां शामिल हैं, जो न केवल किसानों के लिए नए अवसर लाती हैं, बल्कि उन्हें आधुनिक कृषि पद्धतियां अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित करती हैं। यह लेख आधुनिक कृषि विपणन मंचा ई-नाम के महत्व को प्रदर्शित करता है, जो किसानों के लिए लाभ के द्वार खोल रहा है।

भारत में कृषि विपणन एक जटिल और बहुपक्षीय प्रक्रिया है, जो सिर्फ कृषि उत्पादों के उत्पादन से शुरू नहीं होती, बल्कि यह समग्र बाजार संरचना और किसानों की आय को बेहतर बनाने के लिए कई चरणों से गुजरती है। यह प्रक्रिया किसानों को यह तय करने में मदद करती है कि कौन सी फसल उगानी चाहिए, किस समय उगानी चाहिए और किस प्रकार की खेती सबसे लाभकारी हो सकती है। ऐसे निर्णय आमतौर पर बाजार की मांग, लागत, मौसम की परिस्थितियों और किसान के पास उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करते हैं।

भारत में कृषि विपणन की पूरी प्रक्रिया किसानों के लिए अवसर प्रदान करती है कि वे अपनी फसल को बेहतर मूल्य पर बेच सकें और उपभोक्ताओं के लिए यह सुनिश्चित करती है कि उन्हें उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उत्पाद मिलें। यह प्रक्रिया न केवल कृषि क्षेत्र को आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है, बल्कि खाद्य सुरक्षा और किसानों की आय वृद्धि के लिए भी महत्वपूर्ण है।

ई-नाम एक डिजिटल मंच है, जो किसानों को देशभर की मंडियों में अपनी उपज बेचने का अवसर प्रदान करता है। यह एक स्मार्ट और पारदर्शी तरीका है, जिसके माध्यम से किसान अपनी उपज के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। आज ई-नाम किसानों के लिए कृषि विपणन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और सशक्त विकल्प बन गया है। यह प्लेटफॉर्म किसानों को अपनी कृषि उपज को डिजिटल तरीके से बेचने, खरीदने और व्यापार करने की सुविधा प्रदान करता है।

ई-नाम एक अखिल भारतीय इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग पोर्टल है। इसे भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के तत्वावधान में लघु कृषक कृषि व्यवसाय कंसोर्शियम द्वारा लागू किया जाता है। इसका उद्देश्य भारत में कृषि उत्पादों के लिए 'एक राष्ट्र, एक बाजार' के सिद्धांत के तहत मौजूदा मंडियों को एक साझा ऑनलाइन मंच पर जोड़ना है।

ई-नाम से जुड़ने के लिए किसानों को केवल एक सरल पंजीकरण प्रक्रिया से गुजरना होता है। पंजीकरण के बाद उन्हें सीधे मंडी में व्यापार करने की सुविधा मिलती है। यह प्रक्रिया सहज और आसान है, जिससे किसान आसानी से इसका लाभ उठा सकते हैं और अपनी उपज का बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

ई-नाम पर कृषि उत्पाद का विपणन

ई-नाम प्लेटफॉर्म पर कृषि उपज बेचने के लिए किसान को अपने उत्पाद से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मापदंड दर्ज या अपलोड करने होते हैं। इसका उद्देश्य खरीददार को सही जानकारी प्रदान करना और ग्रेडिंग, मूल्य निर्धारण तथा लेन-देन को पारदर्शी बनाना है। किसान को अपनी उपज का नाम (जैसे-गेहूं, धान, प्याज, टमाटर आदि) सही तरीके से दर्ज करना होता है। ग्रेडिंग के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एगमार्क या अन्य क्वालिटी ग्रेड सिस्टम का उपयोग किया जाता है।

किसान को यह भी बताना होता है कि वह कितनी मात्रा (क्विंटल/कि.ग्रा.) में उपज बेचने के लिए तैयार है। फसल की किस्म, नमी की मात्रा और भौतिक विशेषताएं जैसे-रंग, आकार, टूटे दाने या कंकड़-मृदा की मात्रा आदि, इन जानकारियों के आधार पर ही मूल्य निर्धारण और लेन-देन किया जाता है।

ई-नाम प्लेटफॉर्म पर डिजिटल भुगतान और लेन-देन की सुविधा उपलब्ध है। इससे किसानों को सुरक्षित और त्वरित भुगतान मिलता है। पारंपरिक विपणन में बिचौलियों और मंडी एजेंटों के कारण भुगतान में अक्सर देरी हो जाती थी, लेकिन ई-नाम के माध्यम से भुगतान

सहायक आचार्य,कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय नौगांवा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

सीधे किसानों के बैंक खातों में हस्तांतरण हो जाता है। इससे किसानों को समय पर और बिना किसी देरी के राशि प्राप्त होती है।

हर लेन-देन और मूल्य निर्धारण पारदर्शी तरीके से होता है, जिससे किसान विभिन्न मंडियों और व्यापारियों के मूल्य की तुलना कर सकते हैं और अपने उत्पाद के लिए उचित मूल्य पा सकते हैं। डिजिटल रिकॉर्डिंग के माध्यम से लेन-देन का डेटा भविष्य में ऋण आवेदन, बीमा दावे और अन्य वित्तीय गतिविधियों में उपयोग किया जा सकता है, जिससे किसानों के लिए वित्तीय ट्रैकिंग और आर्थिक सहायता प्राप्त करना आसान हो जाता है।

ई-नाम प्लेटफॉर्म किसानों के लिए एक क्रांतिकारी कदम साबित हो रहा है। यह उन्हें व्यापक बाजार तक पहुंच तथा बेहतर मूल्य प्रदान करता है। इसके साथ ही यह मंच कृषि विपणन में पारदर्शिता, समय पर भुगतान एवं आर्थिक समावेशन सुनिश्चित करता है। इस तरह, ई-नाम भारतीय कृषि विपणन को नई दिशा दे रहा है।

चुनौतियां

ई-नाम ने भारतीय कृषि विपणन में महत्वपूर्ण सुधार किए हैं। इसके बावजूद कुछ चुनौतियां और समस्याएं अभी भी मौजूद हैं, जो किसानों और अन्य संबंधित पक्षों को प्रभावित करती हैं।

सबसे बड़ी चुनौती ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी है। ई-नाम का सही उपयोग करने के लिए इंटरनेट और स्मार्टफोन की आवश्यकता होती है। बहुत से किसान इनका इस्तेमाल करने में सक्षम नहीं हैं। इसके साथ ही, प्लेटफॉर्म का प्रभावी उपयोग करने के लिए किसानों को तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

कई किसानों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का अनुभव नहीं है और उन्हें यह पता नहीं होता कि कैसे अपने उत्पादों को सूचीबद्ध करें, मूल्य देखें तथा भुगतान प्राप्त करें। जागरूकता की कमी के कारण कई किसान ई-नाम की विशेषताओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते और पारंपरिक बाजारों की ओर लौट जाते हैं।

सभी मंडियां अभी तक ई-नाम से पूरी तरह जुड़ी नहीं हैं। कुछ राज्यों और मंडियों में यह प्रणाली पूरी तरह लागू नहीं हो पाई है। इससे विपणन की पहुंच सीमित रहती है और किसानों को पूरा लाभ नहीं मिल पाता।

हालांकि ई-नाम का उद्देश्य बिचौलियों की भूमिका को कम करना है। कुछ मामलों में वे अभी भी पारंपरिक तरीके से कार्य करते हैं। बिचौलिए कभी-कभी ई-नाम का उपयोग किए बिना किसानों से सीधे सौदे करने की कोशिश करते हैं।

इसके अलावा, भंडारण सुविधाओं की कमी भी एक बड़ी समस्या है। जब किसान अपनी उपज को मंडी में संग्रहित नहीं कर पाते, तो उन्हें इसे जल्दी बेचने के लिए कम मूल्य पर बेचना पड़ता है। राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत प्लेटफॉर्म बनाने में भी कुछ कठिनाइयां हैं। प्रत्येक राज्य में मंडी शुल्क, लेन-देन के तरीके और कृषि उत्पादों के वर्गीकरण में भिन्नताएं होती हैं। इससे किसानों को अपने राज्य और अन्य राज्यों के बीच अंतर समझने में मुश्किल होती है तथा यह ई-नाम के उद्देश्य को पूरी तरह साकार करने में बाधा डालता है।

बाजार तक सीधी पहुंच

ई-नाम किसानों को सीधे बाजारों से जोड़कर उनके उत्पादों का बेहतर मूल्य प्राप्त करवाने में मदद करता है और बिचौलियों की भूमिका को कम करता है। इस प्लेटफॉर्म पर किसानों को उनके उत्पादों के लिए वास्तविक और पारदर्शी मूल्य का ज्ञान होता है। इसके माध्यम से किसान अपने उत्पाद को जानकर उसे उत्पाद की मंडी में उचित मूल्य पर बेच सकते हैं। इससे मंडी प्रणाली में पारदर्शिता बढ़ती है और बिचौलियों द्वारा किसानों को कम मूल्य पर उत्पाद बेचने के दबाव को कम किया जा सकता है। ई-नाम पर किसान सीधे खरीदारों और बाजारों से जुड़ सकते हैं, चाहे वे थोक व्यापारी, खुदरा विक्रेता या अन्य कृषि उत्पादक हों। इसके माध्यम से किसान मंडी से बाहर अपनी उपज सीधे ग्राहकों या व्यापारियों को भी बेच सकते हैं, जिससे उनका लाभ बढ़ता है और बाजार क्षेत्र विस्तृत होता है। इस प्लेटफॉर्म पर किसान अपनी सभी कृषि उपज जैसे-अनाज, फल, सब्जियां या अन्य कृषि उत्पाद भी बेच सकते हैं। यह विशेष रूप से उन किसानों के लिए फायदेमंद है, जो दूरदराज के क्षेत्रों में रहते हैं और जिनकी मंडियों तक पहुंच सीमित होती है।

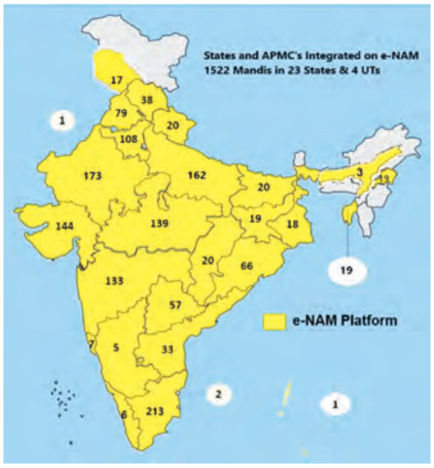

देश में ई-नाम प्लेटफार्म की राज्यवार संख्या

सारणी 1. देश में ई-नाम बाजार की स्थिति

क्र. सं.	राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश	कुल संख्या (मंडियां)
1	अंडमान और निकोबार	1
2	आंध्र प्रदेश	33
3	असोम	3
4	बिहार	20
5	चंडीगढ़ (केन्द्र शासित प्रदेश)	1
6	छत्तीसगढ़	20
7	गोवा	7
8	गुजरात	144
9	हरियाणा	108
10	हिमाचल प्रदेश	38
11	जम्मू और कश्मीर (केन्द्र शासित प्रदेश)	17
12	झारखंड	19
13	कर्नाटक	5
14	केरल	6
15	मध्य प्रदेश	139
16	महाराष्ट्र	133
17	नगालैंड	19
18	ओडिशा	66
19	पुदुचेरी (केन्द्र शासित प्रदेश)	2
20	पंजाब	79
21	राजस्थान	173
22	तमिलनाडु	213
23	तेलंगाना	57
24	त्रिपुरा	19
25	उत्तर प्रदेश	162
26	उत्तराखंड	20
27	पश्चिम बंगाल	18

सारणी 2. ई-नाम के अंतर्गत आने वाले उत्पाद

उत्पाद समूह	कुल संख्या
खाद्यान्न/अनाज	35
तिलहन	15
फल	46
सब्जियां	59
मसाले	17
अन्य	52
कुल वस्तु	224

जलवायु परिवर्तन, रोग प्रतिरोध और लैंगिक न्याय से कृषि का पुनरावलोकन

प्रियंका चौधरी[1], **रवि प्रकाश**[2] और **प्रीति उपाध्याय**[3]

“जलवायु परिवर्तन ने कृषि की पारंपरिक स्थिरता को गहराई से प्रभावित किया है और इसे नई चुनौतियों के सामने खड़ा कर दिया है। वैश्विक तापमान में वृद्धि, बढ़ती आर्द्रता और अनिश्चित वर्षा चक्रों के कारण रोगजनकों की प्रकृति, उनकी सक्रियता अवधि, प्रसार क्षमता और रोगजनकता में गंभीर बदलाव दर्ज किए जा रहे हैं। परिणामस्वरूप फसल रोगों की तीव्रता और संक्रमण दर बढ़ रही है, जिससे उपज, गुणवत्ता और कृषि आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसका असर पशुपालन, मृदा स्वास्थ्य, जल प्रबंधन और खेत संचालन से जुड़े कार्यों पर भी दिखाई दे रहा है। इसमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सबसे अधिक प्रभावित हो रही है। बदलती जलवायु के कारण उनके श्रम, स्वास्थ्य और संसाधन प्रबंधन संबंधी दबाव में भी वृद्धि हुई है। यह लेख कृषि रोग प्रबंधन को समावेशी, लैंगिक-संवेदनशील और अंत:विषय दृष्टिकोण से समझने और प्रभावी समाधान की दिशा में प्रयास करने पर बल देता है।”

जलवायु परिवर्तन के दौर में पादप रोगों में आ रहे बदलाव अब केवल संक्रमण की समस्या नहीं, बल्कि वर्तमान काल की प्रमुख वैज्ञानिक चुनौती बन चुके हैं, जहां रोगजनकों का व्यवहार, सक्रियता और प्रसार क्षमता तेजी से बदल रही है। हालिया जलवायु परिवर्तन और कृषि परिवेशीय असंतुलन के कारण पादप रोगजनकों के व्यवहार में परिवर्तन देखा जा रहा है। विशेष रूप से फाइटोफ्थोरा इनफेस्टैन्स (एक प्रमुख ओमायसीट) अब अधिक आर्द्र और मध्यम तापमान (18-24 डिग्री सेल्सियस) की अनुकूल परिस्थितियों में तेजी से जनन कर आलू और टमाटर में लेट ब्लाइट (पछेती झुलसा) रोग का गंभीर प्रकोप उत्पन्न कर रहा है।

इसी प्रकार आल्टरनेरिया सोलानी तथा फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम (विशेष किस्म लायकोपर्सिकी) जैसी रोग घटनाएं अब पारंपरिक ऋतु चक्र तक सीमित नहीं रह गई हैं। आल्टरनेरिया सोलानी से टमाटर और आलू में होने वाला अर्ली ब्लाइट (अगेती झुलसा) रोग, जो पहले मुख्यत: जून-जुलाई में टमाटर पर प्रकट होता था, अब मार्च-अप्रैल के शुष्क तापीय संक्रमण काल में भी सक्रिय पाया जा रहा है, जिससे फसलचक्र संतुलन प्रभावित हो रहा है।

फ्यूजेरियम अब बहुपरजीवी प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हुए वाहिकीय मुरझान,

[1]पी.एच.डी. पादप रोगविज्ञान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, स्कूल ऑफ जेंडर स्टडीज, इग्नू, पटना (बिहार); [2]भ्रमणशील पशु चिकित्सा पदाधिकारी, पीरो (बिहार); [3]शाकीय विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, दिल्ली

जड़ सड़न और तना सड़न जैसी बहुविध लक्षणात्मक स्थितियां उत्पन्न कर रहा है। इसके अलावा जैन्थोमोनस कैम्पेस्ट्रिस उपप्रकार वेसिकेटोरिया जैसे बैक्टीरिया जनित रोग भी अब उच्च तापमान (>30 डिग्री सेल्सियस) में सक्रिय रहने लगे हैं, जबकि पूर्व में यह 20-28 डिग्री सेल्सियस की तापीय सीमा में अधिक उग्र होती थीं।

वर्तमान शोध संकेत देते हैं कि कई वायुवाहित और बीज जनित रोगजनक अब उच्च बहुरूपता प्रदर्शित कर रहे हैं, जैसे स्पोरल विविधता, परपोषी बदलाव तथा मिश्रित रोग प्रकटता, जिससे रोग नियंत्रण रणनीतियां अधिक जटिल हो रही हैं। आज के संदर्भ में ये जैविक तथा पर्यावरणीय बदलाव पादप रोग विज्ञान को एक बहुआयामी और अंत:विषय अध्ययन क्षेत्र के रूप में पुनर्परिभाषित कर रहे हैं।

रोग प्रतिरोध और जलवायु सहिष्णुता का द्वंद्व

जब पौधों में तनाव सहिष्णुता से जुड़े जीन सक्रिय होते हैं, तो वे रोग प्रतिरोधी जीनों के साथ ऊर्जा तथा पोषक संसाधनों की प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि, उपज और गुणवत्तात्मक प्रदर्शन प्रभावित होता है। इसी क्रम में सिस्टमिक एक्वायर्ड रेजिस्टेंस (एसएआर) की अत्यधिक सक्रियता पौधों में फाइटोहॉर्मोन में असंतुलन उत्पन्न कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की समग्र प्रतिरोध क्षमता कमजोर पड़ने लगती है और वे मिश्रित संक्रमणों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

महिला किसानों की अदृश्य भूमिका

ग्रामीण भारत की कृषि व्यवस्था में महिलाएं एक अदृश्य रीढ़ की तरह कार्य कर रही हैं। आंकड़ों के अनुसार, 80 प्रतिशत से अधिक महिलाएं घरेलू पशुपालन से जुड़ी हैं, लगभग 60 प्रतिशत महिलाएं खेतों के प्रत्यक्ष कार्य जैसे-निराई-गुड़ाई, बुआई, कटाई और सिंचाई में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। इसके बावजूद, वे अब भी 'सहायक' की भूमिका में देखी जाती हैं और विज्ञान आधारित नीतियों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों या तकनीकी निर्णय प्रक्रिया में उनका समावेश नगण्य है। जब किसी क्षेत्र में पादप रोग फैलता है, तो उसका पहला और सीधा प्रभाव फसल उत्पादन में गिरावट के रूप में सामने आता है। यह संकट चारे की उपलब्धता को सीमित करता है, जिससे दुग्ध उत्पादन, पशु स्वास्थ्य और घरेलू पोषण सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में महिलाओं पर दोहरा कार्यभार पड़ता है एक ओर वे पशुओं के लिए वैकल्पिक चारा खोजने की कोशिश करती हैं, वहीं दूसरी ओर रोगी पशुओं की देखभाल, दवा व्यवस्था और साफ-सफाई जैसे कार्य भी उन्हीं के जिम्मे होते हैं। यह अदृश्य श्रम न तो सरकारी आंकड़ों में दर्ज होता है और न ही इसे निर्णय प्रक्रिया में कोई मान्यता मिलती है। सबसे चिंताजनक पक्ष यह है कि जबकि महिलाएं इन सभी दबावों का प्रथम उत्तरदाता होती हैं, उन्हें फसल सुरक्षा, चारा गुणवत्ता निर्धारण, या पशु स्वास्थ्य योजनाओं की डिजाइनिंग में भाग लेने का अवसर नहीं दिया जाता। इस प्रकार, तकनीकी नीति और सामाजिक वास्तविकता के बीच एक स्पष्ट लैंगिक अंतराल बना रहता है।

बकरी के लिए संतुलित आहार प्रबंधन

पादप रोग और पशुपालन का अप्रत्यक्ष संबंध

पादप रोग केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उनके अप्रत्यक्ष प्रभाव पशुपालन व्यवस्था पर भी गहराई से पड़ते हैं। यह संबंध विशेष रूप से तब प्रकट होता है, जब पशुओं को ऐसे चारे या अवशेषों से पोषण दिया जाता है, जो रोगग्रस्त फसलों से प्राप्त हुए हों।

विशेष रूप से फ्यूजेरियम प्रजातियां, एस्परजिलस फ्लावस, और क्लैविसेप्स पर्पुरिया जैसे कवक रोग फसलों में माइकोटॉक्सिन उत्पन्न करते हैं, जो चारे में सम्मिलित होकर पशुओं के शरीर में गंभीर जैविक असंतुलन उत्पन्न कर सकते हैं।

प्रमुख माइकोटॉक्सिन प्रभाव

- **एफ्लाटॉक्सिन विषाक्तता:** लीवर में गंभीर विषाक्तता, भूख में कमी और अत्यधिक संक्रमण स्थिति में मृत्यु तक की आशंका।
- **जिएरालेनोन विषाक्तता:** हार्मोनल असंतुलन से प्रजनन तंत्र में विकार,

गर्भधारण में कठिनाई और संतानोत्पत्ति में विफलता।

- **क्लैविसेप्स फफूंद से उत्पन्न अर्गट विषैले यौगिक:** तंत्रिका तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव और रक्त संचार में बाधा, जिससे अंग कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

इसका सीधा असर दुग्ध उत्पादन पर होता है, जिससे घरेलू आय में कमी आती है। यह संकट उन महिलाओं पर सीधा प्रभाव डालता है, जो घर की दुग्ध अर्थव्यवस्था को संभालती हैं। इसके अतिरिक्त, दूषित दूध मानव उपभोग के लिए असुरक्षित हो जाता है, जिससे परिवार का पोषण स्तर भी प्रभावित होता है।

महिलाओं को रोगग्रस्त चारे की पहचान और सुरक्षित भंडारण की वैज्ञानिक जानकारी देना अत्यावश्यक है, ताकि वे पशुओं को ऐसे अदृश्य जोखिमों से बचा सकें। पादप रोग विज्ञान और पशुपालन विज्ञान के बीच यह सेतु, नीति व अनुसंधान में विशेष ध्यान देने योग्य है।

महिलाओं की भूमिका का वैज्ञानिक सशक्तिकरण

जलवायु परिवर्तन और पादप रोगों की बढ़ती चुनौती के बीच, महिलाओं की सक्रिय भूमिका केवल कार्यबल तक सीमित न रहकर वैज्ञानिक समाधान का अभिन्न अंग बननी चाहिए। उनके अनुभवों, पारंपरिक ज्ञान और दैनिक कृषि गतिविधियों में सहभागिता को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से जोड़ना अत्यावश्यक है। इस प्रकार के उपाय न केवल कृषि में महिलाओं की वैज्ञानिक भागीदारी बढ़ाएंगे, बल्कि अनुसंधान को सामाजिक, व्यावहारिक और समावेशी बनाएंगे।

महिला-केंद्रित रोग निगरानी तंत्र

ग्राम पंचायत स्तर पर स्थापित फील्ड स्काउटिंग इकाइयों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कर उन्हें पादप रोगों की प्रारंभिक पहचान, लक्षण आधारित वर्गीकरण और स्थानीय रिपोर्टिंग तंत्र से जोड़ने की आवश्यकता है। इससे स्थानीय स्तर पर त्वरित रोग नियंत्रण उपाय लागू करना संभव होगा तथा महिला कृषकों की वैज्ञानिक समझ और निर्णय क्षमता भी सशक्त बनेगी।

महिला कृषक द्वारा अजोला उत्पादन

वर्तमान नीति और अनुसंधान

वर्तमान कृषि नीतियां और अनुसंधान ढांचा बदलते पारिस्थितिक परिदृश्य और जैविक चुनौतियों के अनुरूप अद्यतन हो रहे हैं, परंतु लैंगिक दृष्टिकोण का प्रभावी समावेश अब भी गंभीर रूप से अनुपस्थित है। इसकी कमी पादप रोग प्रबंधन, पशु आहार सुरक्षा और जलवायु संवेदनशील कृषि जैसे क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट दिखाई देती है।

भाकृअनुप योजनाओं में लैंगिक डेटा विश्लेषण का अभाव

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की योजनाओं में महिलाओं की भूमिका स्वीकार की गई है, लेकिन लैंगिक रूप से पृथक डेटा संग्रह, विश्लेषण और अनुसंधान आधारित निर्णय प्रक्रिया में समावेशन की ठोस संरचना विकसित नहीं हुई है। कृषि विज्ञान केंद्रों में महिला किसानों की भागीदारी संख्या के रूप में दर्ज होती है, परंतु उनकी वैज्ञानिक सहभागिता, तकनीकी चुनौतियों और अनुसंधान आवश्यकताओं का व्यवस्थित विश्लेषण अभी भी दुर्लभ है।

प्रसार सेवाओं में महिलाओं की न्यूनतम भागीदारी

क्षेत्रीय स्तर की प्रसार सेवाएं जैसे-रोग पूर्व चेतावनी प्रणाली, फसल सलाह या वैज्ञानिक चारा चयन परामर्श अब भी मुख्य रूप से पुरुष केंद्रित बनी हुई हैं, जिसके कारण महिला कृषक और पशुपालक प्रशिक्षण, संचार माध्यमों और परामर्श सेवाओं तक सीमित पहुंच ही बना पाती हैं।

कवक विष निगरानी प्रणाली का अभाव

कवकजनित विषाक्त यौगिकों (जैसे माइकोटॉक्सिन) की निगरानी अधिकतर पशु चारा उद्योग तक सीमित रहती है, जबकि इसका प्रसार खेत चारे से होते हुए घरेलू भंडारण, रसोई और महिला स्वास्थ्य तक पहुंच जाता है। इसकी व्यापक वैज्ञानिक मॉनिटरिंग और नीति स्तरीय जैव सुरक्षा प्रणाली अभी विकसित नहीं हो पाई है।

जलवायु स्मार्ट कृषि मॉडल में लैंगिक दृष्टिकोण की उपेक्षा

ये मॉडल मुख्यत: रोग प्रतिरोध, जल उपयोग दक्षता और उत्पादन वृद्धि पर केंद्रित हैं, लेकिन महिला श्रम भार, निर्णय अधिकार, स्वास्थ्य जोखिम और संसाधन पहुंच जैसे सामाजिक आयामों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। इसके परिणामस्वरूप तकनीकी हस्तक्षेप कई बार अनजाने में सामाजिक असमानता और बढ़ा देते हैं।

जन जागरूक शोध मॉडल

पादप रोग विज्ञान विभागों को चाहिए कि वे सहभागी रोग मानचित्रण और किसान खेत डायरी जैसे नवाचारों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बढ़ाएं। महिलाएं खेतों में रोग प्रभावित फसलों के चित्र, तिथिवार लक्षण तथा किए गए हस्तक्षेपों का व्यवस्थित रिकॉर्ड रख सह-अनुसंधानकर्ता की भूमिका निभा सकती हैं, जिससे शोध अधिक सामाजिक और व्यावहारिक रूप से प्रासंगिक बन सकेगा।

पशु स्वास्थ्य और पादप रोग का एकीकृत प्रशिक्षण

महिलाओं को चारा सुरक्षा कार्यशालाओं के माध्यम से रोगग्रस्त चारे की पहचान, माइकोटॉक्सिन जोखिम मूल्यांकन और स्वच्छ चारा भंडारण की वैज्ञानिक तकनीकों पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, फसल अवशेष प्रबंधन तथा सुरक्षित उपयोग की जानकारी देकर उन्हें रोग और विषाणु संक्रमण से बचाव का व्यावहारिक व वैज्ञानिक ज्ञान भी प्रदान किया जा सकता है।

फसल रोग, पशु स्वास्थ्य और महिला भूमिकाएं अब परस्पर जुड़ी कृषि प्रणालियां हैं। महिलाओं को यदि 'ज्ञान, संसाधन और निर्णय' की शक्ति दी जाए, तो वे केवल लाभार्थी नहीं, संकट को सुलझाने वाली नेतृत्वकर्ता भी बन सकती हैं। ■

भाकृअनुप के 98वें स्थापना दिवस के अवसर पर लोकप्रिय पत्रिकाओं के विशेषांकों हेतु लेख आमंत्रित

1. खेती पत्रिका के "आजीविका उद्यमिता" विशेषांक हेतु लेख आमंत्रित

इस विशेषांक के लिए आजीविका एवं उद्यमिता विषयक सफलता-गाथाएँ आमंत्रित हैं। प्रस्तुत लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण, व्यावहारिक समाधान या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा में तथा आवश्यकता अनुसार सचित्र तैयार किया जाए।

2. फल-फूल पत्रिका के "जैव विविधता" विशेषांक हेतु लेख आमंत्रित

इस विशेषांक के लिए जैव विविधता, संरक्षण, कृषि-परिस्थितिकी तथा संबंधित नवाचारों पर आधारित सफलता-गाथाएँ आमंत्रित हैं। प्रस्तुत लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण, संरक्षण प्रयास या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख सरल, प्रवाहपूर्ण एवं सचित्र तैयार किया जाए। लेखक-निर्देशों का पूर्ण पालन अपेक्षित है।

खेती एवं फल फूल पोर्टल: epatrika.icar.org.in

3. Special Issue of *Indian Farming* on "Environmental Sustainability"

This issue will focus on innovations, technologies, and products that contribute to Environmental Sustainability and support the attainment of the Sustainable Development Goals (SDGs). Articles should present a clear and complete storyline demonstrating how the described method advances specific SDGs and promotes sustainable agricultural practices.

Indian Farming ePubs portal: https://epubs.icar.org.in/index.php/IndFarm/about/submissions

4. Special Issue of *Indian Horticulture* on "Nutrition and Health"

This issue will highlight advancements that enhance nutrition, improve health outcomes, and promote sustainable food systems, contributing to relevant SDGs. Articles should present a coherent narrative demonstrating how the work supports better nutrition and health through horticultural innovations.

Indian Horticulture ePubs portal: https://epubs.icar.org.in/index.php/IndHort/about/submissions

खेती एवं फल फूल पोर्टल: epatrika.icar.org.in Bottom of Form

लेखकों से अनुरोध है कि वे लेख प्रस्तुतीकरण (सबमिशन) संबंधी दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन करें तथा संबंधित अंग्रेज़ी/हिंदी पत्रिकाओं के ePubs/ePatrika पोर्टल पर ही अपना लेख प्रस्तुत करें। लेख प्रस्तुत करते समय यह स्पष्ट रूप से उल्लेख करें कि लेख विशेषांक के लिए भेजा जा रहा है।

लेखन भेजने की अंतिम तिथि : 28 फरवरी 2026

जनवरी के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], कपिला शेखावत[1], प्रवीण कुमार उपाध्याय[1], एस.एस. राठौर[1], अंजली पटेल[1] और कविता बिष्ट[2]

"जनवरी माह, जिसे पौष-माघ भी कहा जाता है, में शीत ऋतु का प्रभाव अपने चरम पर होता है। यह महीना भारतीय कृषि में रबी फसलों की बेहतर उपज सुनिश्चित करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। गेहूं, जौ, चना, सरसों, मटर आदि फसलों की इस समय विशेष देखभाल आवश्यक होती है। अत्यधिक ठंड और पाले का प्रकोप पैदावार को प्रभावित कर सकता है। ऐसे में किसान सिंचाई प्रबंधन, उर्वरक उपयोग, जैविक खाद, मृदा संरक्षण एवं जल प्रबंधन जैसे पारंपरिक और वैज्ञानिक उपाय अपनाकर फसल उत्पादन को सुरक्षित और उन्नत बनाते हैं। जनवरी में सब्जी एवं बागवानी फसलों जैसे-गाजर, मूली, गोभी, धनिया आदि की खेती भी बड़े पैमाने पर की जाती है। ये फसलें किसानों की नकदी आय का प्रमुख स्रोत होती हैं तथा बाजार में इनकी मांग भी अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त, पशुपालन और मछली पालन क्षेत्रों में भी इस दौरान विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। ठंड के मौसम में पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। स्वस्थ पशुधन और सफल मछली पालन ग्रामीण आय में वृद्धि तथा आजीविका सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।"

जनवरी माह रबी फसलों की उपज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ठंड व पाले से फसलों, सब्जियों, पशुपालन और मछली पालन की विशेष देखभाल आवश्यक होती है। कुल मिलाकर, जनवरी माह भारतीय कृषि, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, रोजगार सृजन और खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से एक निर्णायक अवधि है। साथ ही, यह आवश्यक है कि आधुनिक कृषि तकनीकें एवं समयानुकूल जानकारी किसानों तक उनकी अपनी भाषा में पहुंचे, जिसमें **खेती** जैसी लोकप्रिय कृषि पत्रिकाएं महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। जनवरी में किए जाने वाले कृषि कार्य मौसम और फसलचक्र के अनुसार निर्धारित होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

[1]सस्य विज्ञान, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]केवीके, शिकोहपुर, गुरुग्राम (हरियाणा)

गेहूं एवं जौ

पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव

- भारी मृदा में प्रति हैक्टर 132 कि.ग्रा. यूरिया की टॉप ड्रेसिंग पहली सिंचाई के 4-6 दिनों बाद तथा बलुई दोमट मृदा में प्रति हैक्टर 88 कि.ग्रा. यूरिया की पहली टॉप ड्रेसिंग पहली सिंचाई पर और 88 कि.ग्रा. यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग दूसरी सिंचाई के बाद अनुशंसित की गई है। यदि बुआई के समय जिंक एवं आयरन का प्रयोग नहीं किया गया हो और खड़ी फसल में पत्तियों पर इनकी कमी के लक्षण दिखाई दें, तो 1.0 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट एवं 500 ग्राम बुझा हुआ चूना 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। इसके साथ ही आयरन सल्फेट के 0.5 प्रतिशत घोल का 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए। इसी प्रकार, मैंग्नीज की कमी वाली मृदा में 1.0 कि.ग्रा. मैंग्नीज सल्फेट को 200 लीटर पानी में घोलकर पहली सिंचाई के 2-3 दिन पूर्व छिड़काव करें। इसके बाद आवश्यकतानुसार एक सप्ताह के अंतराल पर 2-3 छिड़काव किए जा सकते हैं। छिड़काव सदैव साफ मौसम एवं खिली हुई धूप में ही करें।

खरपतवार प्रबंधन

- गेहूं एवं जौ की फसलों में प्रमुख खरपतवारों में जंगली जई, राईग्रास, जंगली सरसों, गेहूंसा, बथुआ, सेंजी, कृष्णनील, मोथा आदि शामिल हैं। इन खरपतवारों के कारण सामान्यत: फसलों को उपलब्ध होने वाली

लगभग 47 प्रतिशत नाइट्रोजन, 42 प्रतिशत फॉस्फोरस, 50 प्रतिशत पोटाश, 24 प्रतिशत मैग्नीशियम तथा 39 प्रतिशत कैल्शियम की हानि होती है। इसके अतिरिक्त, ये खरपतवार फसलों के लिए हानिकारक कीटों एवं रोगों को आश्रय प्रदान कर फसल को गंभीर क्षति पहुंचाते हैं।

सिंचाई

- गेहूं की फसल की संपूर्ण अवधि में लगभग 35-40 सें.मी. जल की आवश्यकता होती है। इस दौरान सिंचाई की 6 क्रांतिक अवस्थाएं होती हैं-क्राउन जड़ अवस्था (बुआई के 20-25 दिनों बाद), कल्ले विकास अवस्था (40-45 दिन), तने में गांठ पड़ना (65-70 दिन), पुष्पण अवस्था (90-95 दिन), दानों में दूध बनना (105-110 दिन) तथा दाना सख्त होना (120-125 दिन)। इन अवस्थाओं में समय पर सिंचाई न होने पर उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार भारी मृदा में लगभग 4 तथा हल्की मृदा में 6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

शीतकालीन मक्का

जल प्रबंधन

- रबी मक्का की फसल में सामान्यत: 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुआई के तुरंत बाद, दूसरी सिंचाई बुआई के 55-60 दिनों बाद, तीसरी 75-80 दिनों बाद, चौथी 110-115 दिनों बाद तथा पांचवीं 120-125 दिनों बाद करनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर खेत की नमी के अनुसार अतिरिक्त सिंचाई भी की जा सकती है।

गेहूं

खरपतवार प्रबंधन

- रबी मक्का में निराई-गुड़ाई बुआई के 40-45 दिनों बाद करनी चाहिए। यदि मक्का को हरे भुट्टों के रूप में उपयोग करना हो, तो रासायनिक शाकनाशियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव

- नाइट्रोजन की 40 कि.ग्रा. मात्रा की टॉप ड्रेसिंग मंजरी निकलने से पूर्व करें। ध्यान रखें कि उर्वरक प्रयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो।

बेबीकॉर्न की तुड़ाई

- रबी बेबीकॉर्न की गुल्ली को 3-4 सें. मी. लंबाई तथा रेशमी कोपलें निकलते ही तोड़ लेना चाहिए। तुड़ाई के समय ऊपर की पत्तियां नहीं हटानी चाहिए, क्योंकि पत्तियां हटाने से गुल्ली जल्दी खराब हो जाती है। रबी मौसम में एक-दो दिनों के अंतराल पर गुल्ली की तुड़ाई करनी चाहिए।

सारणी: गेहूं एवं जौ में खरपतवार प्रबंधन हेतु अनुशंसित शाकनाशी

खरपतवार	शाकनाशी (रासायनिक नाम)	व्यावसायिक नाम	सक्रिय तत्व (फॉर्मुलेशन)	मात्रा ग्राम/हैक्टर (ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर)	प्रयोग का समय
संकरी पत्ती वाले खरपतवार	सल्फोसल्फ्यूरॉन	लीडर	75 डब्ल्यू.जी.	25 (33.3)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	क्लोडिनाफॉप	टोपिक	15 डब्ल्यू.पी.	60 (400)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	फीनॉक्सीप्रॉप-ईथाइल	प्यूमा सुपर	10 ई.सी.	100-120 (1000-1200)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	पीनाक्साडेन	एक्सिल	5 ई.सी.	35-40 (700-800)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	आइसोप्रोटयूरॉन	एरिलॉन	75 डब्ल्यू.पी.	1000 (1333)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	पेण्डीमेथिलीन	स्टॉम्प	30 ई.सी.	1000-1500 (3333-4950)	बुआई के 1-3 दिनों के भीतर
	2,4-डी-ई	वीडार	38 ई.सी.	500 (1315)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	मेटसल्फ्यूरॉन	अलग्रिप	20 डब्ल्यू.पी.	4 (20)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	कारफेनटाजोन	अफिनिटी	50 डब्ल्यू.डी.जी.	20 (50)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	पेण्डीमेथिलीन	स्टॉम्प	30 ई.सी.	1000-1500 (3333-4950)	बुआई के 1-3 दिनों के भीतर
संकरी एवं चौड़ी पत्ती दोनों	सल्फोसल्फ्यूरॉन	लीडर	75 डब्ल्यू.जी.	25 (33.3)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	पेण्डीमेथिलीन	स्टॉम्प	30 ई.सी.	1000-1500 (3333-4950)	बुआई के 1-3 दिनों के भीतर
	आइसोप्रोटयूरॉन+2,4-डी-ई	एरिलॉन	75 डब्ल्यू.पी.	750+500 (1000-1315)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 प्रतिशत+ मेटसल्फ्यूरॉन 5 प्रतिशत	टोटल	(75+5) डब्ल्यू.डी.जी.	30+2 (40)	बुआई के 30-35 दिनों बाद
	मीसोसल्फ्यूरॉन+ आयोडोसल्फ्यूरॉन	एटलांटिस	3.6 (3+0.6) डब्ल्यू.डी.जी.	12+2+2 (400)	बुआई के 30-35 दिनों बाद

चना

जल प्रबंधन

- सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर चने की फसल में पुष्प आने से पूर्व एक सिंचाई करना लाभप्रद होता है। दूसरी सिंचाई फलियों में दाना बनते समय (70-80 दिनों बाद) करनी चाहिए। इससे दाना भराव अच्छा होता है तथा पैदावार में वृद्धि होती है। यदि शीतकाल में वर्षा हो जाए, तो दूसरी सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती। सिंचाई के लगभग एक सप्ताह बाद ओट आने पर हल्की गुड़ाई करना लाभदायक होता है। साथ ही, अधिक उत्पादन के लिए खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था आवश्यक है, अन्यथा जलभराव की स्थिति में फसल के नष्ट होने की आशंका रहती है।

पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव

- नवीनतम शोधों के अनुसार, असिंचित अथवा देर से बुआई की स्थिति में फली में दाना बनते समय 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का 10 दिनों के अंतराल पर दो बार पर्णीय छिड़काव करना लाभकारी होता है। जिंक की कमी होने पर फसल की पुरानी पत्तियां पहले पीली तथा बाद में जली हुई सी दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति में जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

चना

पौध संरक्षण

उकठा रोग

- चने में उकठा रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम नामक फफूंदी से होता है। इस रोग से संक्रमित पौधों का ऊपरी भाग मुरझा जाता है, पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और अंततः पौधा पूर्ण रूप से सूखकर मर जाता है। रोग का प्रकोप फसल की किसी भी अवस्था में हो सकता है। सामान्यतः पौध अवस्था तथा फूल-फली बनने की अवस्था में अधिक होता है। इसकी रोकथाम हेतु उकठारोधी किस्में जैसे पूसा 372, पूसा 329, पूसा 362, पूसा चमत्कार (बी.जी. 1053-काबुली), पूसा 1003 (काबुली), के.डब्ल्यू.आर. 108, जे. जी. 74, डी.सी.पी. 92-3, जी.एन.जी. 1581, जी.पी.एफ. 2, हरियाणा चना-1 आदि उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त, सरसों के साथ 4 प्रतिशत 1 या 4 प्रतिशत 2 अनुपात में अंतःफसल बुआई करें तथा बीज को ट्राइकोडर्मा (4 ग्राम) एवं वीटावैक्स (1 ग्राम) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करें।

शुष्क जड़ गलन रोग

- यह रोग राइजोक्टोनिया बटाटीकोला नामक फफूंदी से होता है तथा पौधों में फूल एवं फलियां बनने के समय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसकी रोकथाम हेतु शुष्क जड़गलन सहिष्णु किस्में जैसे-एच. 355 एवं आई.सी. सी.वी.-10 उगानी चाहिए। रोग से बचाव के लिए बुआई के समय बीज को कार्बेण्डाजिम या थीरम (1-2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) अथवा वीटावैक्स एवं ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) या बेनोमिल (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए।

फलीछेदक

- यदि चने के खेत में चिड़ियां अधिक बैठती दिखाई दें, तो यह फलीछेदक के संभावित प्रकोप का संकेत होता है। चने की फसल में फलीछेदक की गिडारें प्रारंभ में हल्के हरे रंग की होती हैं, जो बाद में भूरे रंग की हो जाती

पौध संरक्षण

- **मोल्या रोग:** गेहूं की बुआई देर से करने पर मोल्या रोग का प्रकोप होने की आशंका बढ़ जाती है। इस रोग में प्रभावित पौधे पीले एवं बौने रह जाते हैं। फुटाव कम हो जाता है तथा जड़ें छोटी और झाड़ीनुमा हो जाती हैं। जनवरी-फरवरी के दौरान जड़ों पर छोटे, गोलाकार, सफेद एवं चमकदार मादा सूत्रकृमि स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, जो इस रोग की प्रमुख पहचान है। संभावित रोगग्रस्त खेतों में बुआई के समय 6 कि.ग्रा. एल्डीकार्ब या 13 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन को खाद में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- **तनाभेदक:** तनाभेदक की रोकथाम हेतु इमिडाक्लोप्रिड 200 ग्राम प्रति हैक्टर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 250 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। आवश्यकता होने पर प्रोपिकोनाजोल 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
- **दीमक:** बारानी क्षेत्रों में दीमक के प्रकोप की आशंका अधिक रहती है। ऐसी स्थिति में 2 लीटर लिंडेन या क्लोरोपाइरीफॉस को 2 लीटर पानी में घोलकर 20 कि.ग्रा. रेत के साथ अच्छी तरह मिलाएं तथा गेहूं की खड़ी फसल में बुरकाव कर तुरंत सिंचाई कर दें।
- **चूहे:** गेहूं की फसल को चूहों से बचाने के लिए जिंक फॉस्फाइड या एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की टिकियों से बने चारे का प्रयोग किया जा सकता है।
- **पाला:** पाले से बचाव के लिए खेतों के आसपास धुआं करना लाभकारी होता है। इससे तापमान बढ़ता है और पाला पड़ने की आशंका कम हो जाती है। अधिक सर्दी वाले दिनों में शाम के समय सिंचाई करने से भी पाले से प्रभावी बचाव किया जा सकता है।

हैं। ये कीट फलियों को छेदकर अपना सिर फलियों के भीतर डालकर दानों को खाते हैं।

- इसकी रोकथाम के लिए फली बनना प्रारंभ होते ही मोनोक्रोटोफॉस 36 ई. सी. की 750 मि.ली. या फेनवेलरेट 20 ई.सी. की 500 मि.ली. मात्रा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। फसल में पहला छिड़काव 50 प्रतिशत फूल आने के बाद करना चाहिए। यदि रसायन उपलब्ध न हों, तो मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत धूल की 25 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें। वैकल्पिक रूप से, न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (एनपीवी) 250-350 शिशु समतुल्य को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव किया जा सकता है।

कटवा सुंडी

- कटवा सुंडी उगते हुए पौधों के तनों अथवा शाखाओं को काटकर भारी नुकसान पहुंचाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.4 प्रतिशत फेनवेलरेट पाउडर 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें। इसके अतिरिक्त, चने की फसल में 5 प्रतिशत नीम बीज गिरी का अर्क अथवा 3 प्रतिशत नीम ऑयल का प्रयोग करें तथा आवश्यकता अनुसार अनुशंसित कीटनाशियों का उपयोग करें।

मटर

जल प्रबंधन

- मटर की फसल में जल प्रबंधन चने के समान ही किया जा सकता है। पहली सिंचाई पुष्प आने से पूर्व तथा दूसरी सिंचाई फलियों में दाना बनते समय करनी चाहिए।

पौध संरक्षण

चूर्णिल आसिता

- मटर की फसल में चूर्णिल आसिता पाउडरी मिल्ड्यू रोग में पत्तियों, तनों एवं फलियों पर सफेद चूर्ण सा फैल जाता है। इसकी रोकथाम हेतु 3.0 कि.ग्रा. घुलनशील गंधक को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से 10-12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। झुलसा रोग की रोकथाम के लिए 2.0 कि.ग्रा. जिंक मैंग्नीज कार्बामेट को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर फूल आने से पूर्व तथा उसके 10 दिनों बाद दूसरा छिड़काव करें।

फलीछेदक एवं पत्तीभेदक

- फलीछेदक के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 200 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। मटर में पत्तीभेदक की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 20 ई.सी. दवा 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना प्रभावी रहता है।

फली की तुड़ाई

- मटर की फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर फलियों की तुड़ाई करनी चाहिए।

मसूर

जल प्रबंधन

- मसूर की फसल में एक सिंचाई फूल आने से पूर्व करनी चाहिए। धान के खेतों में बोई गई मसूर की फसल में, यदि वर्षा न हो, तो फली बनने की अवस्था में एक अतिरिक्त सिंचाई करना लाभदायक होता है।

खरपतवार प्रबंधन

- मसूर की फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु 'व्हील हैंड हो' की सहायता से समय-समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए।

पौध संरक्षण

जड़ सड़न रोग

- मसूर की फसल में इस रोग के आक्रमण से बुआई के 20-25 दिनों बाद पौधे सूखने लगते हैं। पौधे को उखाड़कर देखने पर तने पर रुई के समान फफूंद लिपटी हुई दिखाई देती है।

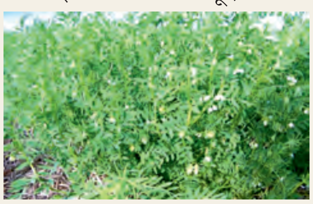

उकठा रोग

- इस रोग में पौधा धीरे-धीरे मुरझाकर सूख जाता है। तने का छिलका भूरे रंग का हो जाता है तथा जड़ को चीरकर देखने पर उसके भीतर भूरे रंग की धारियां दिखाई देती हैं। उकठा रोग का प्रकोप पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है।

जड़ सड़न एवं उकठा रोग का नियंत्रण

- जिस खेत में प्राय: उकठा रोग का प्रकोप होता हो, वहां 3-4 वर्षों तक मसूर की फसल नहीं लेनी चाहिए। उकठा रोग से बचाव हेतु प्रतिरोधी किस्में जैसे-नरेन्द्र मसूर-1, पंत मसूर-4, मसूर-5, प्रिया, वैभव आदि उगाने की अनुशंसा की जाती है।
- इसके अतिरिक्त, जैव कवकनाशी ट्राइकोडर्मा विरिडी 1 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. अथवा ट्राइकोडर्मा हारजिनियम 2 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा को 60-75 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर, हल्का पानी का छींटा देकर 8-10 दिनों तक छाया में रखें। इसके पश्चात बुआई से पूर्व अंतिम जुताई के समय इस मिश्रण को खेत में मिला देना चाहिए।

राई-सरसों

जल प्रबंधन

- फसल में सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर करनी चाहिए। यदि केवल एक सिंचाई उपलब्ध हो, तो 50-60 दिनों की अवस्था पर सिंचाई करें। दो सिंचाइयों की उपलब्धता होने पर पहली सिंचाई बुआई के 40-45 दिनों बाद तथा दूसरी सिंचाई 30-35 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

- फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने

राई-सरसों

के लिए 20-25 दिनों के अंतराल पर निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। इससे सरसों की फसल की अच्छी एवं शीघ्र बढ़वार होती है।

पौध संरक्षण

सफेद रतुआ

- सरसों की फसल को सफेद रतुआ से बचाने के लिए एप्रॉन 35 एस.सी. 6 ग्राम या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। इसके अतिरिक्त, बुआई के 50-60 दिनों बाद यदि रोग के लक्षण दिखाई दें, तो रिडोमिल एम.जैड.-72 डब्ल्यू.पी. का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

झुलसा रोग

- झुलसा रोग के प्रकोप की स्थिति में जिंक मैंग्नीज कार्बामेट 75 प्रतिशत की 2.0 कि.ग्रा. या जीनेब 75 प्रतिशत की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

पत्ती धब्बा रोग

- सरसों में पत्ती धब्बा रोग की रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व बीज को बाविस्टिन या थीरम दवा की 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर फफूंदीनाशक ब्लाइटॉक्स-50 या डायथेन एम-45 की 500-600 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

माहूं

- दिसंबर से जनवरी के दौरान बादलयुक्त मौसम रहने पर सरसों में माहूं का प्रकोप अधिक होता है। इससे बचाव के लिए सरसों की बुआई मध्य अक्टूबर तक अवश्य कर देनी चाहिए। यदि इसके बावजूद माहूं का प्रकोप हो जाए, तो मैलाथियॉन 1 लीटर या फॉस्फेमिडान 85 प्रतिशत की 250 मि.ली. मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

तोरिया सरसों

जल प्रबंधन

- जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां दो सिंचाइयां करना लाभदायक होता है। पहली सिंचाई फूल आने की अवस्था में तथा दूसरी सिंचाई दाना बनने की अवस्था में करने से उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

पौध संरक्षण

पत्ती धब्बा रोग

- इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं, जो गोल छल्लों के रूप में स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह रोग तने, शाखाओं एवं फलियों को भी प्रभावित करता है। तीव्र प्रकोप की अवस्था में फलियां काली पड़कर सूख जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु थीरम 75 प्रतिशत डब्ल्यू.एस. की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजशोधन कर बुआई करें अथवा मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. की 2.0 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

गेरुई रोग

- इस रोग में पत्तियों, पुष्पक्रमों तथा तनों पर नारंगी रंग के फफोले बनते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां पीली होकर सूखने लगती हैं। रोग के नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. की 2.0 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टर 600-750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई

- तोरिया की फसल पकने पर समय पर कटाई करना आवश्यक है, क्योंकि देर करने पर फलियां चटकने लगती हैं, जिससे उपज में हानि हो सकती है।

अलसी

पौध संरक्षण

- **चूर्णिल आसिता:** अलसी की फसल में पाउडरी मिल्ड्यू रोग के नियंत्रण हेतु सल्फेक्स 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- **मृदा एवं बीजजनित रोगों का नियंत्रण:** मृदा एवं बीजजनित रोगों की रोकथाम के लिए जैव कवकनाशी ट्राइकोडर्मा विरिडी 1 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. अथवा ट्राइकोडर्मा हारजिनियम 2 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा को 60-75 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद में मिलाएं। हल्का पानी का छींटा देकर मिश्रण को 8-10 दिनों तक छाया में रखें तथा इसके बाद अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला दें।

सूरजमुखी

- जनवरी में सूरजमुखी की प्राथमिक कृषि गतिविधि बुआई है। यह महीना कई क्षेत्रों, विशेषकर भारत में, ग्रीष्म या वसंत ऋतु की सिंचित फसल के मौसम की शुरुआत के लिए आदर्श है। यदि दिसम्बर में बुआई हुई है तो फसल में नाइट्रोजन की दूसरी या अंतिम किस्त 40-45 कि.ग्रा. यूरिया दें तथा पहली सिंचाई भी करें व फसल उगने के 17 से 20 दिनों बाद गुड़ाई करके खरपतवार निकाल दें।

बसन्तकालीन एवं शरदकालीन गन्ना

बसन्तकालीन गन्ने की बुआई

- पूर्वी उत्तर प्रदेश में बसन्तकालीन गन्ने की बुआई का उपयुक्त समय मध्य जनवरी से फरवरी, मध्य क्षेत्र

गन्ना

चारा फसलें

जई

- जई की फसल में 20-25 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। पहली कटाई बुआई के लगभग 55 दिनों बाद करें। कटाई के बाद प्रति हैक्टर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 44 कि.ग्रा. यूरिया) की टॉप ड्रेसिंग करें।

बरसीम एवं रिजका

- बरसीम एवं रिजका की प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई करते रहें। इससे फसल की बढ़वार अच्छी होती है तथा उच्च गुणवत्ता का चारा निरंतर प्राप्त होता है।

में मध्य फरवरी से मध्य मार्च तथा पश्चिमी क्षेत्र में मध्य फरवरी से मार्च तक होता है। अतः पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसान लाही आदि से खाली खेतों में कार्बनिक खादों का प्रयोग करते हुए खेत की तैयारी करें। बुआई हेतु स्वस्थ बीज का चयन कर उनका उचित प्रबंधन करना आवश्यक है।

बीजोपचार

- बीजोपचार हेतु पारायुक्त रसायन एगलॉल 3 प्रतिशत (560 ग्राम) या एरीटॉन 6 प्रतिशत (280 ग्राम) या एम.ई.एम.सी. 6 प्रतिशत (280 ग्राम) अथवा बाविस्टिन 110 ग्राम को 100-125 लीटर पानी में घोलकर गन्ने के टुकड़ों को उपचारित करें। दीमक अथवा अंकुर बेधक के नियंत्रण हेतु बुआई के समय फोरेट 10 जी. (25 कि.ग्रा.) या क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. (5 लीटर/हैक्टर) का प्रयोग करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- क्षेत्र विशेष में मृदा परीक्षण के आधार पर अनुशंसित उर्वरकों का प्रयोग सुनिश्चित करें। सामान्यतः 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 20 कि.ग्रा. पोटाश तथा 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है।

पेड़ी की तैयारी एवं प्रबंधन

- यदि दिसम्बर-जनवरी में गन्ने की कटाई की जा रही है और पेड़ी फसल लेनी हो, तो यह ध्यान रखें कि इस अवधि में कम तापमान के कारण जड़ों से फुटाव कम होता है। अतः गन्ने की कटाई भूमि की सतह से सटाकर करें। अच्छी पेड़ी फसल प्राप्त करने हेतु मुख्य फसल की कटाई 15 जनवरी से 25 फरवरी के मध्य करें।
- कटाई के उपरान्त गुड़ निर्माण भी किया जाता है। गन्ना काटने के तुरन्त बाद ठूंठों पर 2,4-डी खरपतवारनाशी की 1-2 कि.ग्रा. मात्रा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें तथा गन्ने की सूखी पत्तियों की 15-20 सें.मी. मोटी परत खेत की सतह पर बिछा दें। इससे फुटाव में वृद्धि होती है। तनाछेदक कीटों से बचाव हेतु प्रति हैक्टर 30 कि.ग्रा. फ्यूराडॉन का प्रयोग करें।

अन्तःफसल प्रबंधन

- शरदकालीन गन्ने के साथ ली गई अन्तःफसलें जैसे-मसूर, सरसों, तोरिया, आलू, लहसुन, गेंदा, प्याज, धनिया, मेथी तथा गेहूं आदि में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई, कीट प्रबंधन एवं संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।

सब्जी फसलें

गोभीवर्गीय सब्जियां

- गोभीवर्गीय सब्जियों जैसे-फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी एवं ब्रोकली की फसल में सिंचाई, गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें।
- तैयार गोभियों की कटाई एवं छंटाई कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। फसलों की कटाई उस अवस्था में करें जब वे बंधी हुई एवं कोमल हों। यदि कटाई में देर हो जाए तो गांठें फट सकती हैं। कटाई करते समय 2-3 बाहरी पत्तियां रखें, जिससे बाजार ले जाते समय गांठें खराब न हों।

टमाटर

नवम्बर में लगाई गई नर्सरी जनवरी में रोपी जा सकती है, परंतु पाले से बचाव का समुचित प्रबंधन करें। प्रत्येक 10 दिनों बाद हल्की सिंचाई दें, खरपतवार समय-समय पर निकालें तथा आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई, सिंचाई एवं पौधों को सहारा देने का कार्य करें। उन्नत किस्मों में प्रति हैक्टर 88 कि.ग्रा. यूरिया तथा संकर किस्मों में 130 कि.ग्रा. यूरिया की प्रथम टॉप ड्रेसिंग के 20-25 दिनों बाद दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें। पुरानी फसल में फल छेदक का संक्रमण होने पर खराब फलों को तुरंत तोड़कर नष्ट करें। अधिक संक्रमण की स्थिति में 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन या 0.1 प्रतिशत थायोडॉन का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करें। इस माह के अंत में ग्रीष्मकालीन टमाटर की रोपाई करें। रोपाई के समय उन्नत किस्मों के लिए प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश, 20-25 कि.ग्रा. जिंक एवं 10-12 कि.ग्रा. बोरेक्स का प्रयोग करें।

सब्जी मटर

- फूलगोभी के फूल उस समय काटने चाहिए जब वे ठोस, सफेद, स्वच्छ एवं धब्बारहित हों। पत्तियों के ऊपरी चक्र में पर्याप्त पोषक तत्व होते हैं, अत: उनका भी फूल के साथ उपयोग करना चाहिए। बीज वाली फसल से अवांछित पौधों को निकाल दें।

सब्जी मटर

- मटर की फलियां तोड़ने के लिए तैयार हो गई होंगी तथा फूल भी आ रहे होंगे। मटर में फूल आते समय हल्की नमी होना आवश्यक है। यदि नहीं है, तो हल्की सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार दूसरी सिंचाई फलियां बनते समय भी करनी चाहिए, इससे फसल पाले से भी बची रहेगी। कीट नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन का छिड़काव हर 15 दिनों में करते रहें। पाउडरी मिल्ड्यू के लिए 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम प्रति लीटर पानी में) घुलनशील सल्फर का छिड़काव 7 दिनों के अंतराल पर करें।

आलू

- फसल में जनवरी के प्रथम सप्ताह तक पौधों के ऊपरी भाग को काट दें। उसके बाद आलू को 20-25 दिनों तक जमीन के अंदर ही पड़े रहने दें। ऐसा करने से आलू का छिलका सख्त हो जाएगा और खराब नहीं होगा। इसके 20-25 दिनों बाद खुदाई कर साफ-सुथरे कंदों का चयन करें। बीजोत्पादन वाली फसल में पत्तियों की कटाई 15 जनवरी से पहले अवश्य कर दें तथा कटे हुए पत्तों को खेत से बाहर गड्ढे में दबा दें।

मूली/गाजर

मूली

- पूसा हिमानी किस्म को दिसम्बर से फरवरी तक लगाया जा सकता है। यह 40-70 दिनों में तैयार हो जाती है और हल्का तीखा स्वाद देती है। यदि जापानी व्हाइट किस्म खेत में है, तो सिंचाई और गुड़ाई समय-समय पर करें तथा खरपतवार निकाल दें

गाजर

सेम फली

मैदानी क्षेत्रों में सेम सभी प्रकार की मृदा में 20-30 जनवरी तक बोया जा सकता है। झाड़ीनुमा किस्मों कोनटनडर और पूसा सरवती के 37 कि.ग्रा. बीज को 60×20 सें.मी. पंक्ति की दूरी पर लगाएं। लंबी ऊंची किस्में कैन्टुकी और हेमलता के 17 कि.ग्रा. बीज को पंक्ति दूरी 90×30 सें.मी. पर लगाएं। बेलें चढ़ाने के लिए लकड़ी या लोहे के खंभे लगाएं। बीजाई से पहले 100 क्विंटल गोबर की खाद, 1 बोरा यूरिया, 4 बोरे सिंगल सुपर फॉस्फेट और 1 बोरा म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करें। वहीं पहली सिंचाई बीजाई के 15-17 दिनों बाद करें।

- पूसा रुधिरा और पूसा आसिता किस्में सही समय पर बोने पर जनवरी माह में तैयार हो जाती हैं।
- मूली और गाजर को उखाड़ने से 2-3 दिनों पहले हल्की सिंचाई करें। देर से

मूली

पालक

उखाड़ने पर गुणवत्ता और मूल्य घट जाता है।

पालक, मेथी व धनिया

- पालक, मेथी एवं धनिया की पत्तियों की कटाई कर बाजार भेजें। यदि इनसे बीज लेना हो तो पत्तियां काटना बंद कर दें तथा फसल में 25 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। हर 15-20 दिनों बाद कटाई करके पालक में 20 कि.ग्रा. तथा मेथी में 10 कि.ग्रा. यूरिया छिड़ककर हल्की सिंचाई करें तथा खरपतवार निकाल दें।
- कीट नियंत्रण के लिए दवाई प्रयोग न करें, हालांकि बहुत अधिक आक्रमण होने पर कटाई करके खेत में 2 मि.ली. मैलाथियॉन 70 ई.सी. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर सकते हैं।

लेट्यूस

- सलाद पत्ता (लेट्यूस) एक ठण्डे मौसम की फसल है जिसे शाक वाटिका में उगाना आसान है। भारत के अधिकांश भागों में सलाद पत्ता के बीज अक्टूबर से फरवरी तक बोए जा सकते हैं। रोमेन या कॉस, बटरक्रंच या बिब जैसी ठंड प्रतिरोधी किस्मों और ढीले पत्तों वाले लेट्यूस का चयन करें। कुरकुरे, हल्के सलाद के लिए बेबी ग्रीन्स के रूप में कटाई करें।

राजमा

जनवरी में राजमा की उन्नत और अधिक पैदावार देने वाली किस्में जैसे-पी.डी.आर.-14, मालवीय-15, मालवीय-137, वीएल-63, अम्बर, उत्कर्ष बोई जा सकती हैं। ये प्रजातियां कम समय में तैयार हो जाती हैं। राजमा की खेती के लिए 120-140 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। इस फसल की बुआई थीरम से उपचारित बीज द्वारा 30-40 सें.मी. पंक्ति दूरी और 8-10 सें. मी. गहराई पर करें।

भिंडी

जनवरी भिंडी की बुआई के लिए भी उपयुक्त समय है। इसकी उन्नत किस्मों में पूसा ए-4, पूसा ए-5, परभणी क्रांति, पूसा सावनी, पंजाब परभणी, अर्का अभय, अर्का अनामिका, पंजाब-7, पंजाब-13 इत्यादि हैं। अन्य किस्मों में वर्षा, उपहार, वैशाली, लाल हाइब्रिड, ई.एम.एस.-8 (म्यूटेंट), विजय, विशाल आदि आती हैं। आप अपने क्षेत्र के अनुकूल उन्नत किस्म का चयन कर इसकी बुआई कर सकते हैं। सामान्यतया इसकी बुआई करते समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. तथा बीज से बीज की दूरी 60 सें.मी. रखी जाती है।

कद्दूवर्गीय सब्जियां

- कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिए खेत की तैयारी के समय 20-25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या 7-8 टन नाडेप कम्पोस्ट प्रति हैक्टर की दर से भूमि में मिला दें तथा बुआई से पूर्व प्रति हैक्टर 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 25 कि.ग्रा. पोटाश आपस में मिलाकर बोने वाली नालियों या थाले बनाकर मृदा में अच्छी तरह

लोबिया

मिला दें। इसके बाद एक स्थान पर 2-3 बीज की बुआई करें।

- चप्पन कद्दू की ऑस्ट्रेलियाई ग्रीन और पूसा अलंकार किस्मों को इस माह में बुआई कर सकते हैं। पूसा अलंकार की पैदावार 45 टन/हैक्टर तक होती है।
- वॉक इन टनल में चप्पन कद्दू तथा अन्य कद्दूवर्गीय फसलें जैसे-लौकी आदि बेमौसमी फसलें लगाकर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

लोबिया

- लोबिया की बुआई के लिए यह समय उपयुक्त है। इसके लिए खेत की तैयारी करें और इसकी अच्छी किस्मों का चयन करें। इसकी उन्नत प्रजातियों में पूसा कोमल, अर्का गरिमा एवं पूसा दो फसली शामिल हैं। इसमें पूसा कोमल लोबिया ऐसी किस्म है जो बैक्टीरियल ब्लाइट से प्रतिरोधी है।
- इसके अतिरिक्त किसान इस माह के अंत में जायद की मिर्च, कद्दूवर्गीय, भिंडी, फ्रेंचबीन, लोबिया एवं बैंगन फसल के लिए खेत की तैयारी शुरू कर दें। इस माह में बेबीकॉर्न की बुआई भी की जा सकती है।

बागवानी फसलें

आम

- जनवरी में आम के वृक्षों में बौर आना शुरू हो जाता है। अतः किसानों को अच्छा उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए अभी से इसकी देखभाल करनी चाहिए। थोड़ी सी चूक भी रोग और कीट के कारण पूरी फसल को नष्ट कर सकती है। आम के शूट गॉल कीट से बचाव हेतु दिसंबर-जनवरी में शूट गॉल प्रभावित गांठों को थोड़ी पुरानी लकड़ी सहित काटकर जला दें। वहीं भुनगा कीट से नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 4 मि.ली. को 10 लीटर पानी में मिलाकर या कार्बोरिल 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त, ब्यूवेरिया बेसियाना फफूंद 0.5 प्रतिशत या नीम तेल 3000 पीपीएम की 2 मि.ली. मात्रा को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना प्रभावी है।

अमरूद

आम

- जिन क्षेत्रों में बौर आने के समय मौसम असामान्य रहा हो, वहां सफेद चूर्णिल रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) से सुरक्षा के लिए 0.2 प्रतिशत गंधक घोल का सुरक्षात्मक छिड़काव करें और आवश्यकतानुसार दोहराएं। अधिक नमी वाले क्षेत्रों में श्यामव्रण रोग अधिक पाया जाता है। इसका आक्रमण मुख्य रूप से पत्तों, शाखाओं और फूलों पर होता है। इससे प्रभावित हिस्सों में गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग के लक्षण दिखाई देते ही 0.2 प्रतिशत जिनैब का छिड़काव करें।

अमरूद

- अमरूद के बागों की कटाई-छंटाई का कार्य पौध रोपण के दूसरे वर्ष के दौरान भी जारी रहता है। दो वर्षों के बाद, कैनॉपी की परिधि के भीतर की छोटी शाखाएं सघन और सशक्त ढांचे का निर्माण करती हैं। सही तरीके से सधाई और छंटाई द्वारा तैयार किए गए पौधे की ऊंचाई 2.5 मीटर और व्यास लगभग 2 मीटर तक सीमित रखने के लिए प्रत्येक वर्ष जनवरी-फरवरी में शाखाओं की कटाई की जाती है।

कागजी कलां नीबू

- इसकी दूसरी फसल जनवरी माह में तैयार हो जाती है। ठीक प्रकार से फलों की तुड़ाई और प्रसंस्करण द्वारा अधिक लाभ कमाया जा सकता है। नीबूवर्गीय फलदार वृक्षों जैसे किन्नों

कागजी नीबू

में, खट्टा और सोह सर्कार मूलवृंतों का उपयोग कर किन्नों में फलों की उपलब्धता इस माह तक सुनिश्चित की जा सकती है।

आंवला

- आंवला के बाग में गुड़ाई करें एवं थाले बनायें। आंवला के एक वर्ष के पौधे के लिए 10 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस और 75 ग्राम पोटाश देना आवश्यक है। 10 वर्ष या उससे पुराने पौधों में यह मात्रा बढ़ाकर 100 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट, 1 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस और 750 ग्राम पोटाश दें। उक्त मात्रा में पूरा फॉस्फोरस, आधी नाइट्रोजन और आधी पोटाश की मात्रा का प्रयोग जनवरी में करें।

मृदु सड़न रोग (फोमोप्सिस फाइलेन्थाई)

- यह रोग दिसंबर से फरवरी के मध्य अधिक देखा जा सकता है। संक्रमित भाग पर जलसिक्त भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो लगभग 8 दिनों में पूरे फल को आच्छादित कर देते हैं और फल के आकार को विकृत कर देते हैं। यह रोग छोटे और परिपक्व फलों, दोनों को प्रभावित करता है, लेकिन परिपक्व फलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। तुड़ाई के बाद फलों कोडाइफोलेटॉन (0.15 प्रतिशत), डाइथेन एम-45 या बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करके भंडारित करने से रोग की रोकथाम की जा सकती है।

गुठलीभेदक कीट (करक्यूलियो प्रजाति)

- यह कीट जून से जनवरी तक सक्रिय रहता है। अधिक प्रकोप होने पर पहला छिड़काव 0.2 प्रतिशत कार्बेरिल, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या 0.05 प्रतिशत क्विनालफॉस कीटनाशी से करना चाहिए, जब फल मटर के दाने के बराबर अवस्था में हों। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव कीटनाशी बदलकर 15 दिनों के अंतराल पर करें।

आंवला

लीची

- जनवरी में ठंड चरम पर होती है, साथ ही लीची का पौधा पाले के लिए

लीची

अंगूर

अंगूर की बेलें 15 जनवरी से 15 फरवरी तक 10 फीट के फासले पर लगा दें। नई बेलों में 20 कि.ग्रा. प्रति बेल की दर से गोबर की खाद जनवरी में देकर सिंचाई करें। इसके अलावा 100 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फोरस और 80 ग्राम पोटाश प्रति पौधा दें। 5 वर्ष या उससे ऊपर के पौधों में यह मात्रा बढ़ाकर 500 ग्राम नाइट्रोजन, 300 ग्राम फॉस्फोरस और 400 ग्राम पोटाश कर देनी चाहिए। फॉस्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा तथा नाइट्रोजन और पोटाश की आधी मात्रा कटाई-छंटाई के बाद जनवरी माह में अवश्य दें।

बेल चढ़ाने के तरीकों में हैड, निफिन, टेलीफोन तथा बाबर मुख्य हैं। इनका चयन किस्मों के हिसाब से करें। अंगूर में कटाई-छंटाई का कार्य इस माह में पूरा कर लें।

अत्यंत संवेदनशील होता है। ऐसे में इनकी पाले से सुरक्षा अत्यावश्यक है। इसके लिए सिंचाई के साथ मल्चिंग तकनीक का भी प्रयोग किया जा सकता है। मल्चिंग के लिए फसल अवशेष, पॉलीथीन या घास-फूस का प्रयोग करें। पूरक के रूप में पाले से सुरक्षा के लिए डाइमिथाइल सल्फोऑक्साइड 0.2 प्रतिशत या थायोयूरिया 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

- इनके अतिरिक्त, जनवरी में अंगूर, आड़ू, अनार और नाशपाती के पौधे लगाने के लिए सर्वोत्तम समय है। लगाने के समय दीमक नियंत्रण जरूर करें। अमरूद, आम, आंवला, लीची, पपीता एवं केला के नवरोपित बागों की सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें। अमरूद, पपीते, आंवले और नीबू के पके फलों की तुड़ाई करें। फलों के पुराने बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

रजनीगंधा

रजनीगंधा के बल्बों की रोपाई हेतु क्यारियों में 45 सें.मी. गहरी खुदाई करके 15 दिनों के लिए छोड़ दें। खेतों तथा क्यारियों की नियमित निराई करके साफ रखना चाहिए। यह कार्य माह में एक बार किया जा सकता है। खेतों को साफ-सुथरा रखने से पौधे स्वस्थ रहते हैं और प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पुष्पों का आगमन कंदों के रोपण से 60-90 दिनों बाद प्रारंभ हो जाता है तथा जाड़े तक चलता रहता है। स्पाइक को तेज चाकू या ब्लेड से काटकर 100-100 के बंडल बनाकर पुष्प बाजार में विक्रय हेतु भेजा जाता है।

लम्बे समय तक आकाश में बादल छाए रहने पर अथवा समुचित धूप न मिलने पर माहूं का आक्रमण हो जाता है। इसके निवारण हेतु 0.25 प्रतिशत मैलाथियॉन के घोल का छिड़काव करना चाहिए। टिड्डे नई पत्तियों एवं फूलों को प्रभावित करते हैं, जिसे 5 प्रतिशत कॉन्फीडोर के छिड़काव द्वारा रोका जा सकता है। लाल चींटियां पत्तियों की निचली सतह पर मिलती हैं और पौधों का रस चूसकर पत्तियों को पीला, सफेद या भूरा बना देती हैं। इन्हें 0.2 प्रतिशत केलथेन या मोनोक्रोटोफॉस के छिड़काव द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

गुलाब

- गुलाब में समय-समय पर सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें तथा आवश्यकतानुसार बडिंग और इसके जमीन में लगाने का कार्य कर लें।
- गुलाब में माहूं, दीमक एवं शल्क कीट दिखाई देने पर तुरंत डाइमिथोएट 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी या मोनोक्रोटोफॉस 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए। दीमक के नियंत्रण हेतु सिंचाई के साथ-साथ फोरेट 10 जी 3-4 ग्राम या फालीडॉल 2 प्रतिशत धूल 10-15 ग्राम प्रति पौधा गुड़ाई करके मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।

गुलाब

गेंदा

- जनवरी में गेंदा की खेती में छंटाई और पिंचिंग शामिल है, जिससे पौधे घने होते हैं और फूलों का उत्पादन अधिक होता है। पौधों के आसपास नियमित निराई और मृदा की गुड़ाई से हवा का अच्छा प्रवाह होता है। इसके साथ ही खरपतवार से प्रतिस्पर्धा कम होती है। हल्का उर्वरक प्रयोग, जैसे नाइट्रोजनयुक्त या संतुलित उर्वरक, स्वस्थ विकास में सहायक होता है। ठंडे मौसम में पानी की कमी और पाले से बचाने के लिए उचित सिंचाई बनाए रखें।

गेंदा

ग्लैडियोलस

- ग्लैडियोलस की मुड़ी हुई टहनियों को निकाल दें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। घनकंदों की बुआई के पश्चात अगेती किस्मों में लगभग 60-65 दिनों में, मध्य किस्मों में 80-85 दिनों तथा पछेती किस्मों में 100-110 दिनों में पुष्प उत्पादन शुरू हो जाता है। पुष्प दंडिकाओं को काटने का समय बाजार की दूरी पर निर्भर करता है।

कैलेंडुला

- जनवरी में कैलेंडुला के निरंतर पुष्पण को बढ़ावा देने के लिए नियमित रूप से मुरझाए फूलों को तोड़ना चाहिए। मृदा को मध्यम रूप से नमीयुक्त, लेकिन अच्छी जल निकासी वाली बनाए रखें, क्योंकि अधिक पानी देने से पौधे को नुकसान हो सकता है। पौधे के आधार के आसपास गीली घास डालने से मृदा की नमी बरकरार रहती है और तापमान नियंत्रित होता है। इसके अलावा, कीट जैसे एफिड (चूसक कीट) की जांच करें और उन्हें तुरंत हटा दें। इसके लिए कीटनाशक साबुन का स्प्रे सहायक है।

इनके अतिरिक्त एल्स्ट्रोमीरिया में स्टेकिंग, कॉर्नेशन को खेतों में लगाना, जरबेरा तथा लिलियम में समय-समय पर सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें। फूलों या स्पाइकों की कटाई सुबह के समय करनी चाहिए। कटाई के बाद डंडियों को बाल्टी में भरे पानी में रखना चाहिए। यदि पुष्पों को दूर भेजना हो, तो डंडी की नीचे की कली में जैसे ही रंग दिखाई देना शुरू हो जाए, उसे काट लें और सौ-सौ के गुच्छों में बांधकर बाजार में भेजें। यदि जल्दी प्रयोग में लाना हो तो तीन-चार पुष्प अवश्य पूर्ण विकसित होने चाहिए।

कृषि खबरें, देश-विदेश की

हिमालयी स्नो ट्राउट का बदलता प्रजनन चक्र

हिमालय की नदियों में पाई जाने वाली स्नो ट्राउट मछलियां अब अपने प्राकृतिक प्रजनन चक्र से बदलने लगी हैं। भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिकों के एक हालिया अध्ययन में यह पाया गया है कि मछलियों की प्रजनन क्षमता उम्र पर नहीं, बल्कि शरीर की लंबाई पर निर्भर करती है। शोध के अनुसार, मादा स्नो ट्राउट 23.6 सें.मी. की लंबाई प्राप्त करने पर पहली बार अंडे देने में सक्षम होती है। यह ठंडे पानी की हिमालयी प्रजातियों के जीवनचक्र को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण खोज है।

यह अध्ययन हिमाचल प्रदेश की तीर्थन, उत्तराखंड की असीगंगा और अरुणाचल प्रदेश की पश्चिम कामेंग नदियों में किया गया। सामान्य रूप से स्नो ट्राउट का प्रजनन काल दिसंबर से मार्च के बीच होता है, जब तापमान कम और प्रवाह स्थिर रहता है। लेकिन अब मानव हस्तक्षेप जैसे-जलविद्युत परियोजनाएं, प्रदूषण, बाहरी मछली प्रजातियों का प्रवेश और नदी प्रवाह में परिवर्तन के कारण ट्राउट वर्षभर अंडे देने लगी हैं। यह स्थिति इनके जीवनचक्र और पारिस्थितिक संतुलन दोनों के लिए संकट बन गई है।

स्नो ट्राउट नदियों की खाद्य श्रृंखला की प्रमुख कड़ी है। यदि इसका प्रजनन असंतुलित होता है, तो कीट, झींगा और अन्य छोटी जलीय प्रजातियों की संख्या पर भी असर पड़ेगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह बदलाव नदियों के तापमान में वृद्धि का संकेत है, जो जलवायु परिवर्तन की दिशा में एक गंभीर चेतावनी है।

इसके साथ ही, पहाड़ी राज्यों में हजारों लोग ट्राउट मत्स्य पालन से अपनी आजीविका कमाते हैं। यदि इनकी संख्या या आयु प्रभावित होती है, तो मत्स्य पालन पर निर्भर परिवारों की जीविका भी संकट में पड़ सकती है। इसलिए हिमालयी नदियों की पारिस्थितिकी को सुरक्षित रखने हेतु प्रभावी संरक्षण नीतियां और संवेदनशील जल प्रबंधन उपाय अपनाना समय की आवश्यकता है। ■

शंकुधारी वृक्षों पर गहरा रहा कीट संकट

दुनियाभर के वन वर्तमान में कीटों के बढ़ते प्रकोप से नए पर्यावरणीय संकट का सामना कर रहे हैं। हाल के वर्षों में शंकुधारी वृक्षों जैसे-स्प्रूस और देवदार पर इन कीटों का प्रकोप तेजी से बढ़ा है। चेक यूनिवर्सिटी ऑफ लाइफ साइंसेज के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए एक अध्ययन में बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन और बढ़ते तापमान ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है।

अध्ययन के अनुसार, जब मौसम अत्यधिक गर्म और शुष्क होता है, तो वृक्षों की प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड़ जाती है। कमजोर वृक्ष कीटों के लिए आसान शिकार बन जाते हैं। ये छोटे-छोटे कीट वृक्षों की छाल में घुसकर उनका रस चूसते हैं और धीरे-धीरे पूरे वृक्ष को नष्ट कर देते हैं। इस कारण से कई क्षेत्रों में बड़ी संख्या में वृक्ष सूखकर गिरने लगे हैं। इससे न केवल वनों की हरियाली घट रही है, बल्कि वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास भी नष्ट हो रहे हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि इस संकट से निपटने के लिए पारंपरिक वानिकी पद्धतियों में बदलाव आवश्यक है। ऐसी वृक्ष प्रजातियों का चयन किया जाना चाहिए, जो तापमान और नमी के उतार-चढ़ाव को सहन कर सकें। साथ ही, जंगलों की नियमित निगरानी, जैविक नियंत्रण विधियों का उपयोग और स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ाने जैसे उपाय भी जरूरी हैं। यदि समय रहते इन कदमों को नहीं अपनाया गया, तो आने वाले दशकों में पृथ्वी के विशाल वन क्षेत्र गंभीर रूप से प्रभावित हो सकते हैं। ■

वन संरक्षण से ग्रीनहाउस गैसों में कमी

वैश्विक स्तर पर ग्रीनहाउस गैसों को कम करने के प्रयास जारी हैं और इस दिशा में सबसे प्रभावी उपाय वन संरक्षण को माना जा रहा है। ब्राजील ने इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने कुल उत्सर्जन में उल्लेखनीय कमी दर्ज की है। हाल ही में क्लाइमेट वॉचब्रेरी द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार, ब्राजील में वर्ष 2023 में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 16.7 प्रतिशत घटा है। यह 2009 के बाद की सबसे बड़ी गिरावट है। देश का कुल उत्सर्जन 2.576 गीगाटन से घटकर 2.145 गीगाटन पर आ गया, जिसका प्रमुख कारण अमेजन और सेराडो क्षेत्रों में वनों की कटाई में कमी है।

रिपोर्ट बताती है कि ब्राजील सरकार द्वारा वन विनाश पर नियंत्रण और सशक्त निगरानी प्रणाली की पुनः सक्रियता से यह सुधार संभव हुआ है। वर्ष 2019 से 2022 के बीच ढिलाई के बाद सरकार ने जंगलों के संरक्षण को प्राथमिकता दी। हालांकि, रिपोर्ट यह भी इंगित करती है कि यदि आगजनी की घटनाएं नहीं होती, तो यह कमी और अधिक प्रभावी होती।

एक अन्य चिंता का विषय यह है कि ब्राजील के कुल उत्सर्जन में लगभग 51 प्रतिशत हिस्सा पशुपालन क्षेत्र, विशेष रूप से मवेशियों से आता है। रिपोर्ट में कहा गया कि यदि ब्राजील का बीफ उद्योग एक अलग देश होता, तो वह दुनिया का सातवां सबसे बड़ा उत्सर्जक होता, जापान से भी आगे।

उल्लेखनीय है कि आगामी जलवायु सम्मेलन कॉप-30 का आयोजन ब्राजील में होने जा रहा है। ऐसे में वन संरक्षण से उत्सर्जन में आई गिरावट को वह अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत कर सकता है, जो अन्य विकासशील देशों के लिए प्रेरक उदाहरण साबित होगा। ■

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाइपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा